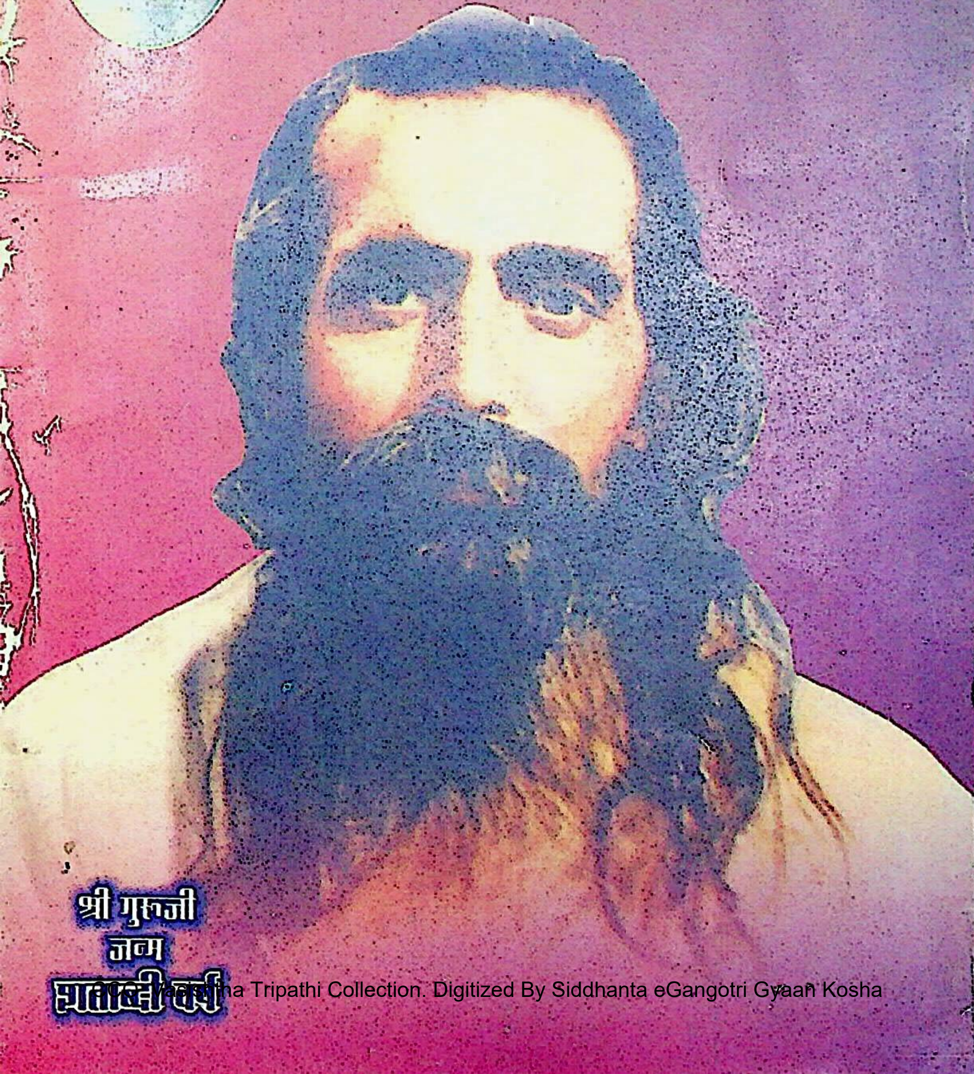
हमारे श्री गोलवलकर जी के सुखद संस्मरण



श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी



श्री गुरुजी
जन्म
शताब्दी वर्ष

दो शब्द

पूज्य ब्रह्मचारीजी श्रीगुरुजी के विषय में अपने संस्मरणों की एक पुस्तक लिख रहे हैं। उसमें उनका आदेश है कि मैं भूमिका के रूप में कुछ लिखूँ, मेरी एक बहुत बड़ी परीक्षा ही है। जिन्होंने १०८ पुस्तकें लिखने का संकल्प किया हो और वह पूर्ण नहीं हो रहा हो, उनके लिये लिखना तो एक सहज कर्म है—शायद इसके बिना उनका दैनिक क्रम ही उलट-पुलट हो जाये, पर जिसको बोलने मात्र से ही काम चलाना होता है उसके लिये लिखना एक भयंकर समस्या है। एक ओर महाराजजी का आदेश और दूसरी ओर अपनी असमर्थता। पर कौन जाने इसमें महाराजजी की मेरे कल्याण की कोई योजना छिपी हो। इसीलिए अपने को अज्ञ जानते हुए भी यह आज्ञा पालन की।

पूज्य ब्रह्मचारीजी से यद्यपि मेरी माँ बहुत वर्षों से परिचित थीं। सम्भवतः १९२४-२५ से जब करनवास में वे श्रीगंगाजी के किनारे यात्रा करने टिके हुए थे, और अपनी माताजी के साथ गंगा स्नान करने करनवास जाया करता था। परन्तु मेरा अच्छा परिचय महात्मा गांधी के हत्याकाण्ड के बाद तब आया जब संघ पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। शाखाएँ बन्द थीं परन्तु हम स्वयंसेवक कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी कार्यक्रम के बहाने इकट्ठे होते रहते थे। एक बार झूँसी में महाराजजी के संकीर्तन भवन में कार्यक्रम रखा गया। पूज्य ब्रह्मचारीजी ने उन दिनों मौनव्रत ले रखा था और उनसे वार्ता स्लेट-पेंसिल के माध्यम से होती थी। महाराजजी के यहाँ हम सभी का बड़ा स्नेह-स्वागत रहा और प्रत्यक्ष भेंट-वार्ता में इतना प्रेम मिला जैसे कि मैं वर्षों से उनको केवल जानता ही नहीं, उनका अपना कोई हूँ। फिर तो यह परिचय बढ़ता ही गया, जब कभी समय मिला उनके आश्रम की ओर मेरी मोटर साइकिल मुड़ जाती थी। संघ पर से प्रतिबन्ध उठवाने के लिए दिल्ली के शासन के प्रमुखों को श्रेष्ठ पुरुषों से जो पत्र लिखवाने की योजना चली थी उसमें भी महाराजजी ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को, जिनसे उनका निकट का स्नेह सम्बन्ध था, बड़ा मार्मिक और आग्रह का पत्र लिखा।

सन् १९४२ के अगस्त मास में आन्दोलन के कारण प्रयाग विश्वविद्यालय बन्द हो गया। तभी मेरा संघ शाखा में प्रथम बार जाना हुआ। उसके पूर्व देश स्वतंत्र करने के कांग्रेस के प्रयत्नों में सहयोग देना और उन

नेताओं को ही अपने मार्गदर्शक के रूप में मानना मेरा काम था। १९४२ में सभी नेताओं का एकाएक जेल में पकड़ जाना और पीछे अपने अनुयाइयों को कुछ भी न बता जाना इस नेतृत्व के प्रति पहला सबसे बड़ा धक्का था। आनन्द भवन जाने पर भी वहाँ से कुछ भी रास्ता न मिला। फिर देश के लिये काम करने के अन्य मार्ग की खोज प्रारम्भ हुई। उसी में एक मेरा छोटा मित्र मुझे संघ शाखा में ले गया। पढ़ाई के साथ शाखा में भी रुचि बढ़ती गई और सन् १९४३ में अधिक कुछ सीखने के लिये मैं काशी में लगे उस वर्ष के संघ शिक्षा वर्ग में जा पहुँचा। यद्यपि प्रारम्भिक कष्ट तो बहुत लगे क्योंकि अनेक वर्षों में मैं गर्मी नैनीताल में बिताने का आदी बन गया था और काशी की मई जून भट्टी के समान ही थी, परन्तु उस वर्ग में पूज्य गुरुजी से प्रथम भेंट हुई। मैंने उनका भाषण 'शिवाजी महाराज का जयसिंह को पत्र' पर सुना। पूरे ढ़ाई घण्टे मैं मंत्रमुग्ध सा बैठा रहा और लगा कि आज सच्चा और सही मार्गदर्शक मिल गया है। परिचय भी पूज्य गुरुजी से विशेष प्रकार से हुआ क्योंकि मैं उसी समय एम०एस०सी० में प्रथम श्रेणी में पास भी हुआ था। वह पू० गुरुजी का प्रथम परिचय निकटता में बढ़ता गया। ज्यों-ज्यों संघ का अधिकाधिक कार्य का उत्तरदायित्व मुझे मिलता गया। फिर तो कई बार वे मेरे यहाँ ठहरे, और कई-कई दिन साथ रहने का भी सौभाग्य बढ़ता गया। वे दिन बड़ी तेजी से कार्यवृद्धि के थे—१९४३ से १९४६ तक संघ कार्य की वृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी रही। समूचा हिन्दू समाज संघ को अपना रक्षक, पू० गुरुजी को अपने मार्गदर्शक के रूप में देखने लगा। गुरुजी के दौरे अत्यन्त व्यस्त रहते थे और यद्यपि लगभग प्रतिवर्ष ही उनका एक दिन को प्रयाग आना होता था। परन्तु स्वयंसेवकों का एकत्रीकरण, कार्यकर्ताओं की बैठक, प्रमुख पुरुषों से मिलना, इसी में सभी समय चला जाता था। मेरा भी पू० ब्रह्मचारीजी से उतना निकट का उस समय परिचय नहीं था और महाराजजी झूसी के बाहर जाते भी कम थे। इसीलिए दोनों महापुरुषों की भेंट बहुत देर से हुई। समझता हूँ, कि सन् १९५०-१९५१ के समय यह भेंट हुई यद्यपि इसके पूर्व १९४०-४१ में रेल के डिब्बे में पहिले वे मिले थे। दोनों ने एक दूसरे के विषय में इतना सुन रखा था कि लगा वर्षों के बिछुड़े बन्धु मिल रहे हैं। मानों प्रत्यक्ष, राम-भरत का मिलन हो, देखने वालों के हृदय गद्गद् हो गये और आँखों में प्रेमाश्रु आ गये। फिर तो यह भेंट कोई न कोई प्रसंग लेकर होने लगी। पूज्य पुरुषोत्तमदास टण्डनजी का भी उन दिनों वास्तव्य प्रयाग में ही था। महाराजजी का उनसे बहुत ही स्नेह का सम्बन्ध था। वे भी बीच-बीच में उपस्थित रहते थे। गोरक्षा के प्रश्न पर तीनों की एक जैसा ही भावना का सम्बन्ध था और उस राष्ट्रीय विषय को लेकर अनेक योजनाएँ

और कल्पनाएँ साथ-साथ बनतीं। कुम्भ के अवसर पर १६५४ में गोहत्या निरोध समिति का प्रयाग का अधिवेशन हुआ और उसमें कई दिन साथ रहना इन श्रेष्ठ पुरुषों का हुआ। फिर मथुरा का अधिवेशन १६५५ में। सभी में सम्बन्ध बढ़ते-बढ़ते एकात्मता में परिणित हो गये। मैं तो केवल मात्र तिथियों का संयोग बिठाने वाला, ब्रह्मचारीजी महाराज का संदेश गुरुजी तक और वापसी सन्देश महाराजजी तक पहुँचाने वाला मात्र था। पत्र में लिफाफे का जो उपयोग होता है वही मेरा रहा। वैसे एक का क्षेत्र भक्तिमार्ग से लोगों का हृदय शुद्ध करते हुए उनका नैतिक और सामाजिक स्तर उठाने का तथा दूसरे का हिन्दू समाज को संगठित कर उसे साहसी, पराक्रमी, क्रियाशील बनाने का था। परन्तु हिन्दू और हिन्दुस्थान के मान बिन्दुओं की रक्षा दोनों का मिलन बिन्दु था और अपने देश, समाज और धर्म को उठाने के मार्ग भले ही अलग लगें उद्‌देश्य तो एक ही था। दोनों की सरलता, अहम् का स्पर्श मात्र भी न होना, विद्वता के साथ अतिशय विनम्रता एक दूसरे का साथ खींचने में सहायक हुई। फिर तो एक प्राण दो शरीर वाली उक्ति चरितार्थ हो गई। पू० गुरुजी के ५१ वें जन्म दिवस पर कानपुर के विशाल कार्यक्रम में पू० महाराजजी ही अध्यक्ष थे। प्रयाग से पहुँचने में देर हो गई। संघ का कार्यक्रम समय से प्रारम्भ होना चाहिए। इसलिए कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया था। गुरुजी के स्वागत में भाषण हो रहा था और महाराजजी कार से उतर कर मंच की ओर बढ़ रहे थे। गुरुजी तेजी से मंच से उतरे और महाराजजी के सामने चरणस्पर्श के लिये झुके। महाराजजी ने स्वयं झुककर उनको बीच में ही रोक लिया और दोनों आलिंगन में बद्ध हो गये। हजारों लोगों ने वह प्रेम मिलन देखा और दोनों के जय-जयकार के नारे फूट पड़े।

ऐसे अनेकों प्रसंग आते रहे और आपस में परामर्श के आधार पर गोरक्षा का कार्य पूज्य महाराजजी अधिकाधिक आगे बढ़ाते गये। एक वर्ष महाराजजी ने गोसेवाव्रत लेकर, केवल टाट पहन कर, सब लिखना पढ़ना छोड़ कर, गऊएँ चराना ही प्रारम्भ किया। गोलोक वृन्दावन के उस व्रत के समापन पर पूज्य गुरुजी के साथ पण्डित दीनदयालजी भी आये थे। १६६६ में पूज्य ब्रह्मचारीजी ने ब्रदीनाथ में ही गोरक्षा के लिए एक अत्यन्त कठोर संकल्प ले लिया, ऋषिकेश और हरिद्वार आकर उनका गोरक्षा के लिए आमरण अनशन। सभी महाराज जी के प्रेमी अवाक् रह गए। पूज्य गुरुजी को समाचार मिला तो वे भी अत्यन्त चिन्तित हुए, परन्तु सार्वजनिक घोषणा के बाद परिवर्तन का कोई प्रश्न रहा नहीं। पूज्य महाराज जी ने गोलोक में ही यह व्रत किया। उनके इस व्रत के साथ पुरी शंकराचार्य पूज्य श्री निरंजनदेव तीर्थ ने भी आमरण अनशन प्रारम्भ किया।

एक महीने के अनशन में पूज्य महाराजजी अतिशय अशक्त हो गए। मैं उस समय विश्वविद्यालय से लगभग पूर्ण अवकाश लेकर कभी पूज्य ब्रह्मचारी के पास, कभी उनका कोई सन्देश लेकर दिल्ली व कभी संघ दौरे पर रहा। इसी अनशन के साथ गौरक्षा के लिए दिल्ली में सत्याग्रह भी प्रारम्भ हुआ। सत्याग्रहियों की संख्या बढ़-बढ़कर जाने लगी। कई सहस्र सत्याग्रही तो मथुरा से ही गए। मथुरा के आस-पास का वायुमण्डल बड़ा उग्र होने लगा। अब महाराजजी के शरीर के दुर्बल होने के साथ मस्तिष्क पर भी प्रभाव पड़ने लगा। नींद प्रायः लुप्त हो गई। कोई विषय मस्तिष्क में बैठ जाता तो घण्टों उसकी चर्चा करते रहते। सर्दी के कारण शरीर को अत्यधिक कष्ट होता क्योंकि अन्दर कोई गर्मी देने वाला पदार्थ था ही नहीं। अंगीठी सेकने और कमरे को गर्म करने के लिए रखी जाती तो उसका धुँधा कमरे के वायुमण्डल को और भी विचित्र बना देता। गुरुजी का नाम बराबर उनकी जिह्वा पर रहता। बीच में गुरुजी दिल्ली आकर सर्वदलीय गोरक्षा समिति की बैठक में परामर्श करके गए भी थे, परन्तु महाराजजी की स्थिति अतिशय खराब हो जाने पर गुरुजी को फोन किया गया। गुरुजी उन दिनों केरल के प्रवास पर थे। तुरन्त प्रवास स्थगित कर वे वृन्दावन आये और सर्वोच्च समिति की बैठक भी वहीं रखी गई। पूज्य ब्रह्मचारी जी की स्थिति से गुरुजी अत्यधिक चिन्तित हुए। मथुरा के कलक्टर और एस०पी० भी बड़े परेशान थे। उनको लग रहा था कि मथुरा के उग्र वातावरण में यदि महाराजजी को कुछ हो गया तो बहुत बड़े स्तर पर हिंसा प्रारम्भ हो जायेगी। पूज्य गुरुजी को तो लगा कि अब वह स्थिति आ गई है कि सर्वोच्च समिति पूज्य ब्रह्मचारी जी से अनशन त्यागने का आग्रह करे परन्तु समिति के लोग हिचक रहे थे। प्रो० रामसिंह और स्वामी करपात्रीजी अभी अनशन चलाने के पक्ष में थे और कह रहे थे कि हम जनता को क्या मुँह दिखलायेंगे? पूज्य गुरुजी ने आग्रह से कहा कि आप सारा दोष मेरे ऊपर डाल दें मुझे जनता का कोई भय नहीं है और मुझे कभी वोट माँगने उसके पास जाना नहीं है। परन्तु उस समय अनशन स्थगित न हुआ। पूज्य गुरुजी के आग्रह से महाराजजी ने जल अधिक मात्रा में और वह भी औटाया हुआ जिसमें स्वाभाविक लवणों की मात्रा कुछ अधिक हो जाती है लेना स्वीकार किया। जाते समय प्रेम का वह अनोखा दृश्य देखने को मिला। पूज्य ब्रह्मचारीजी ने गुरुजी से उनकी शाल माँगी और अपनी देते हुए कहा कि तुम तो यहाँ जल्दी न आ पाओगे परन्तु इस चादर में तुम्हारी सुवास में मैं तुम्हारा स्मरण कर लिया करूँगा और तुम्हारी निकटता का अनुभव कर लूँगा। अश्रुपूर्ण नेत्रों से गुरुजी ने बिदाई ली। जाते समय मुझसे गुरुजी ने कहा दौरा और कार्यक्रम है उसे पूरा करना है पर मेरा मन यहीं लगा रहेगा।

१९६६ का कुम्भ पूज्य गुरुजी का अद्भुत संगठन कुशलता का एक विलक्षण रूप प्रस्तुत करने वाला रहा। विश्व हिन्दू परिषद का एक अखिल भारतीय अधिवेशन प्रयाग कुम्भ के अवसर पर किया गया। पूर्ण देश से लगभग १५००० प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विदेशों से भी हिन्दुओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे। एक ही मंच पर शंकराचार्य, महामण्डलेश्वर, सिख, जैन, बौद्ध आदि अनेक सम्प्रदायों के प्रमुख उपस्थित थे। हिन्दू समाज की विभिन्नता में भी एकता का विलक्षण दृश्य था। पुरी के शंकराचार्य महाराज किसी कारण रुष्ट होकर मंच से कुछ विचित्र बोलने लगे। सभा में विरोध की आवाज गूँजने लगी, लगा सारा किया कराया एकता का प्रयत्न इस संघर्ष में समाप्त न हो जाये। पूज्य गुरुजी ने मंच पर आकर सभी को शान्त किया और २-३ घण्टे में ही द्वारिका के शंकराचार्य तथा अपने प्रयत्नों से पुनः पुरी के शंकराचार्यजी को मंच पर लाकर सामंजस्य का वायुमण्डल उत्पन्न करा दिया। सभी के मुँह से यही सुनाई देता था कि आज गुरुजी न होते तो यहाँ संघर्ष होकर रहता। अपनी छोटी बातों को लेकर हिन्दू समाज लड़ने का आदी बन गया है। अपनी नाक ऊँची रहे चाहे समाज और देश का कुछ भी हो जाये। उसी में गुरुजी ने उस कौशल का परिचय दिया कि जिसमें बड़े-बड़े आचार्य मिलकर अपने समाज के उत्थान का संकल्प लेकर अधिवेशन से गए। सारा प्रबन्ध और प्रयत्न तो पूज्य गुरुजी की प्रेरणा से संघ और विश्व हिन्दू परिषद के कार्यकर्ताओं ने किया ही था, परन्तु सम्मेलन की सफलता के लिए यदि कोई एक व्यक्ति कारणीभूत था तो वे थे श्रीगुरुजी। ऐसा सारे कुम्भ का वायुमण्डल बना।

पूज्य ब्रह्मचारीजी की श्रीगुरुजी को एक बार श्रीब्रदीनाथ ले जाने की बड़ी इच्छा थी। इसका सहारा मिला गुरुजी के अभिन्न-मित्र और गुरुभाई स्वामी अमूर्तानन्दजी द्वारा। उन्होंने भी मुझे कई बार बद्री-केदार की यात्रा की योजना बनाने के लिए कहा। परन्तु गुरुजी वहाँ इच्छा होने पर भी क्यों जाने लगे? उसके लिए कोई कारण भी चाहिए था। साधारणतः तो जहाँ शाखा है, स्वयंसेवक हैं उनसे मिलने के हेतु ही उनका जाना होता था। महाराजजी ने एक मार्ग निकाला। बद्रीनाथ में लोगों के ठहरने के लिए धर्मशालाओं का अभाव है। पूज्य ब्रह्मचारीजी ने संकीर्तन भवन की ओर से वहाँ एक भवन निर्माण करवाया। भवन की पूर्ति पर उन्होंने उसका उद्घाटन श्रीगुरुजी के द्वारा करवाने का सोचा और उसका आग्रहपूर्वक निमंत्रण जुलाई में ही गुरुजी के पास भिजवाया। उधर स्वामी अमूर्तानन्दजी ने भी गुरुजी से इस कार्यक्रम के निमित्त सितम्बर मास में एक सप्ताह निकालने के लिए आग्रह किया। जुलाई की बैठक में जब पूज्य गुरुजी का वर्ष भर के दौरे का कार्यक्रम बनता

था मैंने भी सात दिन छुड़वाकर रखे। बद्री केदार की यात्री के लिए या तो अप्रैल, मई, जून के मास उपयोगी रहते हैं या फिर वर्षा के बाद सितम्बर अक्टूबर के। संघ शिक्षा वर्ग के कार्यक्रम होने के कारण पूज्य गुरुजी का गर्मी के महीनों में तो वहाँ जाना संभव ही नहीं था, अतः यह योजना सितम्बर में बनायी गयी। पूज्य गुरुजी, डॉ. आबाजी थत्ते, अमिताभ महाराज (अमूर्तानन्दजी) व लाला हंसराजजी तथा हम सब व उस क्षेत्र के तरुण कार्यकर्ता साथ थे। पूज्य महाराजजी वृन्दावन से अपनी मोटर में अलग से आये और हम लोगों का मिलन ऋषिकेश में हुआ। वैसे मार्ग में हरिद्वार में एक विश्व हिन्दू परिषद की बैठक हुई तथा ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्दजी की (दैवी जीवन संस्थान) में पूज्य गुरुजी का वहाँ के आश्रमवासियों के बीच एक प्रवचन हुआ। उसी दिन सायंकाल तक श्रीनगर पहुँचना था जहाँ स्वयंसेवकों का एक छोटा सा कार्यक्रम भी आयोजित था। हमारे साथ एक एम्बेसेडर, एक जीप तथा पूज्य गुरुजी के लिए देहरादून के संघचालक जी की एक बड़ी इम्पाला कार थी। परन्तु इम्पाला कार ने तो चढ़ाई पर अपना दम तोड़नां प्रारम्भ कर दिया। अभी असली चढ़ाई तो प्रारम्भ ही नहीं हुई थी। इसलिए लगा कि यह विदेशी कार स्वदेशी तीर्थस्थान जाना नहीं चाहती है और उसके यात्रियों को शेष दोनों कारों में बाँटकर तथा मैं पूज्य महाराजजी की कार में बैठकर श्रीनगर पहुँचे।

केदारनाथजी का रास्ता अभी पूरा बना नहीं था। अन्तिम १०-१२ मील पैदल, घोड़ा या डांडी के द्वारा ही तय हो सकता था। केदारनाथजी की अन्तिम चढ़ाई भी बड़ी भयंकर है- मील में ५००० फुट चढ़ना पड़ता है। गुरुजी को पैदल चलने का अभ्यास तो इधर कम ही हो गया था। जिसको घोड़े पर चढ़ने का काम न पड़ता हो उसको घोड़ा भी पैदल चलने सरीखी ही थकावट देता है। कमर, जाँघ, कन्धे दो-चार मील में ही दर्द करने लगते हैं। पूज्य गुरुजी को हम लोग डांडी में ले जाना चाहते थे परन्तु उन्होंने मनुष्य के ऊपर चलने वाले वाहन पर चढ़ने से पूर्णतः मनाकर दिया था। उनकी इच्छा तो पैदल चलने की ही थी, यद्यपि हम जानते थे कि वह कितना कठिन है और अधिक से अधिक घोड़े पर। हम लोगों ने पूज्य ब्रह्मचारी जी से कहा कि गुरुजी को डांडी पर चढ़ने के लिये तैयार करें। कोई शास्त्र से बात निकालकर उनको सिद्ध करें कि मनुष्य के कन्धों पर चलने में भी कोई आपत्ति नहीं है। हम सबसे तो गुरुजी ने स्पष्ट कह दिया था कि मनुष्य के कन्धों पर चलने के लिए तो उन्होंने केवल अन्तिम यात्रा निश्चित किया है, परन्तु महाराजजी के कहने पर उन्होंने इतना स्वीकार किया कि वहाँ पहुँचकर देखा जायेगा। पर केदारनाथ जाने का तो प्रसंग ही नहीं आया क्योंकि रास्ते

में वर्षा के कारण कई स्थानों पर पहाड़ खिसक आया था और मार्ग अवरूद्ध हो गये थे। हमें रुद्रप्रयाग में ही दो दिन बद्रीनाथ के रास्ते के साफ होने के लिए रुकना पड़ा।

पहाड़ों पर सर्दी बहुत पड़ती है और पूज्य गुरुजी धोती छोड़कर अन्य कुछ पहनते नहीं। इसलिए सर्दी में उनको कष्ट न हो यह सोचकर धोती के नीचे भी जो पहना जा सकता है ऐसा एक सूती बुना हुआ पाजामा मैं लेता गया, परन्तु गुरुजी ने उसका भी कभी प्रयोग नहीं किया। मोजा व जूता भी साधारणतः गुरुजी पहनते नहीं थे। उसकी भी व्यवस्था की गयी थी परन्तु उसका भी उपयोग नहीं हुआ। मेरे अतिशय आग्रह पर उन्होंने उत्तर दिया कि पहाड़ में अनेकों व्यक्ति बिना किसी जाड़े के वस्त्र के यदि काम चलाते हैं तो मुझे सर्दी से बचने के लिए इतने कपड़ों की क्या आवश्यकता है? गुरुजी चाय के शौकीन तो अवश्य थे परन्तु कई वर्षों से उन्होंने उसके साथ कुछ खाना छोड़ दिया था। न तो सायंकाल भोजन करते थे न रात्रि में दूध लेते थे। दिन भर में केवल एक समय वह भी अत्यल्प भोजन, उनको पहाड़ की सर्दी में कैसे शक्ति और गरमी प्रदान करेगा यह हम लोगों की चिन्ता का विषय था। इसलिए हम लोगों ने एक ओर तो कुछ मेवा तथा बादाम और मुनक्का से निर्मित कुछ लडडू साथ ले लिए थे। मैंने उनसे कहा कि पहाड़ पर चाय के साथ कुछ लेना अत्यन्त आवश्यक है। एक दिन उनको आग्रहपूर्वक एक लडड् भी खिलाया परन्तु यह कहकर कि इसमें मेरे दाँत चिपक जाते हैं न तो उन्होंने आगे लड्डू ही लिया न मेवा का ही प्रयोग किया। पूज्य महाराजजी, गुरुजी को शुद्ध घी के ऊपर आग्रह जानने के कारण विशेष रूप से मूँग के लड्डू बनाकर लाये थे। उनको भी हम कार्यकर्ताओं को ही खाना पड़ा। पूरे प्रवास में गुरुजी का वही पूर्ववत् एक बार भोजन का तथा शुद्ध चाय का ही प्रयोग बना रहा।

केदारनाथ जी की यात्रा स्थगित हो जाने के कारण श्री बद्रीनाथ क्षेत्र में तीन दिन रहने का विधान पूर्ण हुआ। अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ पूज्य गुरुजी माना ग्राम गये जो भारत का सीमावर्ती अन्तिम ग्राम है और वहाँ के छोटे-छोटे सभी बच्चों को एकत्रित कर उनसे अपने देश व धर्म के विषय में प्रश्न पूछे तथा सभी को मिठाई देने की व्यवस्था करवायी। बद्रीनाथ में भी एक दिन वहाँ के सभी तीर्थपुरोहितों को बैठक तथा उसमें गुरुजी ने सभी से वे अपने कर्मकाण्ड के विषय में कितना जानते हैं यह पूछा। गुरुजी ने उनसे आग्रह किया वे अपने कार्य को पूर्ण शास्त्रसम्मत् रीति से करें और दक्षिणा में क्या मिलता है इसका विचार न करें तभी हिन्दू समाज की श्रद्धा बनी रह सकती हैं। बद्रीनाथ के रावल तो केरल के नम्बूद्री ब्राह्मण होते हैं। उन दिनों

के रावल ने पूज्य गुरुजी का केरल में विद्यार्थी अवस्था में भाषण सुना था और उनका संघ से भी अच्छा परिचय था। उनके साथ भी गुरुजी का वार्तालाप तथा चायपान का कार्यक्रम हुआ। बद्रीनाथ के अन्य नागरिकों के साथ भी भेंट-वार्ता उन दिनों में हुई। सभी को गुरुजी ने अपने धर्म पर विश्वास के साथ चलने की तथा सभी बन्धुओं के साथ स्नेह सम्बन्ध दृढ़ करने का आग्रह किया।

उन्ही दिनों पूज्य ब्रह्मचारीजी के द्वारा कथा सुनने का गुरुजी को अवसर प्राप्त हुआ। महाराजजी के शब्दों में जैसी संघवालों को प्रतिदिन शाखा लगाये बिना, प्रार्थना किये बिना, चैंन नही पड़ता वैसे ही साधू-सन्तों को भगवान के गुणगान को सुने सुनाये बिना चैन कहाँ। दोपहर तीन बजे पूज्य ब्रह्मचारी जी प्रसाद लेकर उपस्थित होते थे और फिर घण्टे डेढ़ घण्टे उनकी रसमयी बाणी से कथा सुनने का हम सभी को आनन्द प्राप्त होता था। महाराजजी तो कथा इतनी तन्मयता के साथ कहते हैं, पात्रों के सारे भाव भावनाएं उनमें भी इतनी पूर्णता से व्यक्त होती हैं कि सुनने वाला उस कथा गंगा में पूर्णतः बह जाता है। प्रेमाश्रुपूर्ण आँखों से गुरुजी भी उस कथा को सुनते थे और जब कथा समाप्त होती थी तो सभी एक अतृप्तता का अनुभव करते थे। बद्रीनाथ यात्रा का यह कथा-प्रसंग एक अभूतपूर्व अंग था। एक दिन मुझसे हँसते हुए गुरुजी ने कहा कि अब यहाँ से जल्दी ही जाना चाहिए नहीं तो हिमालय की यह शान्ति, ब्रह्मचारीजी की यह कथा कहीं मुझे यहीं रह जाने के लिए विवश न कर दे। ऐसे प्रसंगों पर प्रकट हो जाता था कि यद्यपि गुरुजी ने डाक्टरजी के कहने पर अपना अध्यात्म का प्रथम प्रेम छोड़कर समाजसेवा का व्रत अपनाया था परन्तु फिर भी वह प्रथम आकर्षण प्रबल हो उठता था और उसे प्रयत्नपूर्वक ही गुरुजी दबाकर रखते थे।

इन दोनों महापुरुषों का अन्तिम मिलन २८ फरवरी, १९७३ को काशी में हुआ। जनवरी मास के अन्त में जब गुरुजी उत्तर प्रदेश के दौरे पर आये थे तब उनका स्वास्थ्य खराब लगा। वे स्वास्थ्य के चेक-अप के लिए बम्बई गए और यहाँ हम लोगों ने प्रयाग के भृगुसंहिता वाले पंडितजी से प्रश्न पूछा तो बड़ा ही अशुभ उत्तर मिला। कुण्डली दिखाने पर एक यज्ञ के आयोजन का विधान था। अतएव महारुद्र यज्ञ काशी में करवाया गया। पूज्य गुरुजी का जन्म दिवस २८ फरवरी को इस वर्ष पड़ता था-उसी दिन यज्ञ की पूर्णाहुति थी। पूज्य गुरुजी कलकत्ता से उसके लिए आये और प्रयाग से पूज्य ब्रह्मचारीजी भी उसके लिए पहुँचे। महाराजजी इसके पूर्व पाँच-छः दिन से फ्लू से पीड़ित थे। उपवास रखने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गए थे, परन्तु फिर भी पहुँचे और इस बार पूज्य गुरुजी के लिए भेंट में अन्य वस्तुओं के साथ

एक लँगोटी भी ले गए। मानो सभी कामों से मुक्ति की उनकी अनुमति मिल गई। मार्च मास में असम और बिहार का दौरा बड़ी अस्वस्थता में पूज्य गुरुजी ने पूरा किया और मार्च के अन्त में प्रतिनिधि सभा में उनका अन्तिम भाषण हुआ। बीच में कुछ स्वास्थ्य सुधार सा लगा परन्तु शायद वह हम लोगों को समाधान देने के लिए ही था। ५ जून को उनकी ज्योति उनके नश्वर शरीर को छोड़ चली। यह सत्य है कि वह आज करोड़ों देशवासियों के हृदयों में जल रही है।

पूज्य गुरुजी का और महाराजजी का इतना निकट का, इतना स्नेह का सम्बन्ध था कि यह स्वाभाविक था कि महाराजजी उसे लेखबद्ध करें। मुझे इन दोनों महापुरुषों का निकट का सहवास, स्नेह और मार्गदर्शन मिला है। भगवान् के पादपद्मों में यही प्रार्थना है कि मैं नर्मदाजी के पत्थर के समान न रह जाऊँ, जो दिन रात जल में रहकर भी एक भी कण जल को अपने अन्दर प्रवेश करने नहीं देता। इन दोनों के अप्रतिम समाज प्रेम, अखण्ड साधना का कुछ भी अंश अपने अन्दर धारण कर पाऊँ तो मेरा भी जीवन सफल हो जाये। राम का चरित्र सुनते-सुनते यदि बानर के समान उनके पीछे चलने वाला भी बन पाया तो बड़ा सौभाग्य। बाकी समाज और स्वयंसेवक बन्धुओं को पूज्य गुरुजी का स्मरण करा उस दिशा में आगे बढ़ने का कार्य तो यह संस्मरण करेंगे ही इसमें कोई सन्देह नहीं।

रज्जूभैय्या

'आनन्द' प्रयाग

गुरुजी के निजी सचिव डॉ० थत्ते का पत्र

।। श्री ।।

नागपुर दिनांक ८।७।७३

पूज्य श्री ब्रह्मचारीजी!

सादर साष्टांग प्रणाम

श्री रज्जूभैय्या ने कहा मैं कुछ लिखूँ ऐसी आपकी आज्ञा है। बड़ा विचित्र लगा। आप जैसे तपस्वी द्वारा लिखे हुए एक महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध के संस्मरणों में मैं क्या लिखूँ? वैसे भी मैं लिखना जानता नहीं और यह विषय ऐसा है कि इस सम्बन्ध में तो लिखना बहुत ही कठिन है।

मैं प्रयाग नहीं आ रहा हूँ। अनेकों ने आग्रह किया किन्तु मन नहीं मानता। मैं जबलपुर में 'रक्षाविसर्जन' के समय भी नहीं गया था। कुछ विचित्र अजीब सा लगता है। आपसे क्या छिपाऊँ काम में व्यस्त हूँ। पत्र-व्यवहार है, परमपूजनीय सरसंघचालकजी के साथ प्रवास है और परम पूजनीय श्री गुरुजी के आशीर्वाद है इसी कारण स्वयं को सम्भाल सका हूँ, औरों को कुछ सांत्वना भी कर पाया। उन्होंने बहुत कुछ दिया है। उस पर ठीक प्रकार से चलने की शक्ति तथा बुद्धि प्राप्त हो यही परमात्मा से प्रार्थना है।

अनेक प्रसंग अनेक बातें दिमाग में आती रहती हैं। पूज्य स्वामी अमूर्तानन्द से भेंट हुई थी अभी मासिक श्राद्ध दिवस पर वे आये थे, स्वाभाविक ही बद्रीनारायण के प्रवास का स्मरण हुआ, आपका श्रीमद्भागवत का स्मरण होकर सब बातें हुई और केदार का दर्शन रह गया ऐसा भी उन्होंने कहा। मेरे जीवन का आधे से अधिक कालखण्ड उन्हीं के साथ बिताने का सौभाग्य मुझे मिला किन्तु मैं कुछ लिखने में असमर्थ हूँ आप क्षमा करें। आपका अनुग्रह तो है ही सदैव आशीर्वाद रहे यही प्रार्थना है।

भवदीय

आबा थत्ते

श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

'गुरुजी' की संस्मृति

(विशेष संस्मरण)

तृष्णां छिन्दि भजक्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः।
सत्यं ब्रूह्मनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।।

मान्यान्मानय विद्विपोप्पनुनय प्रख्यापय स्वान् गुणान्।
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम्।।

(भ०ह०नी०श०-७८ श्लोक)

छप्पय

तृष्णा छेदन करो क्षमा कूँ धारो भाई।
करो त्यागि अभिमान पाप में मन न लगाई।।

नितई बोलो सत्य पाउ पदवी साधुनि की।
मान्यनि को करि मान करो सेवा गुनिजन की।।

मुदित शत्रु हू कूँ करो, प्रकट करो निज गुननि कूँ।
सत् पुरुषनि लच्छन जिही, हिय में धारो सबनि कूँ।।

*श्री भर्तृहरिजी सज्जन पुरुषों के लक्षण क्या हैं? सज्जन बनने को कौन-कौन से गुण धारण करने चाहिये इन्हें बताते हुए कहते है--

(१) तृष्णा का छेदन करो, (२) क्षमा को धारण करो, (३) मद का त्याग करो, (४) पाप में रति मत करो, (५) सत्य बोलो, (६) साधुओं की पदवी को धारण करो, (७) विद्वानों की सेवा करो, (८) मान्य पुरुषों का मान करो, (९) द्वेषियों के प्रति भी अनुनय करो, (१०) अपने शुभ कर्मों से अपने गुणों को प्रख्यात करो, (११) अपनी कीर्ति का पालन करो, (१२) दुखियों पर दया करो, ये ही सब सज्जन पुरुषों के लक्षण है।"

संसार में जिसने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना अवश्य पड़ेगा। उत्पन्न होने वाले की मृत्यु अनिवार्य है। किन्तु जिनका समस्त जीवन समर्पित है, अर्थात् जो अपने स्वार्थ के निमित्त कुछ भी नहीं करते, जिनका सब समय परमार्थ के कार्यों में ही व्यतीत होता है, जो आठ पहर चौंसठ घड़ी परोपकार की ही बात सोचते रहते हैं, जिनका चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, बोलना-भाषण करना, लिखना-पढ़ना सब परमार्थ के लिये, दूसरों के उपकार के ही लिये होता है, ऐसे सत् पुरुष संसार में विरले ही होते हैं। वे अपने कर्मों के भोगों के निर्मित अवनि पर अवतरित नहीं होते। वे तो

कारक पुरुष होते हैं, भगवान् की विशेष विभूति होते हैं, परमात्मा की ओर से विशेष कार्य के लिये भेजे जाते हैं। उनका अपना निजी कोई स्वार्थ नहीं होता। वे सूर्य, चन्द्र, सुमेरु, हिमालय, गंगा, यमुना के सदृश सबके होते हैं, सदा सर्वदा वे सभी की सेवा में सदा संलग्न बने रहते हैं। जितने समय के लिये उन्हें भेजा जाता है, उतने समय तक वे निरन्तर पुरुषार्थ में लगे रहते हैं, जब उनका समय पूरा हो जाता है, वे एक अज्ञात पथिक की भांति चुपचाप उठकर चले जाते हैं। न तो उन्हें अपने कर्तृव्य कर्मों के प्रति ममता होती है और न अपने कर्तृव्य का अभिमान ही होता है, वे अहंता ममता से शून्य निरलिप्त भाव से जगत् में आते हैं, उनके या तो कोई सगे सम्बन्धी होते ही नहीं हैं या फिर सभी उनके सगे सम्बन्धी होते हैं। वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उपासक होते हैं। ऐसे परोपकारी पुरुष नर नहीं साक्षात् नारायण के ही स्वरूप होते हैं। हमारे श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर गुरुजी ऐसे ही महापुरुषों में से थे।

यह जो वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्मावलम्बिनी आर्य जाति है, जो अब हिन्दू समाज के नाम से विख्यात है। इसकी संस्कृति-सभ्यता अत्यन्त ही प्राचीन है। कोई नहीं कह सकता वह सभ्यता कब से चली, इसीलिए हम इसे सनातन धर्म, अनादि सभ्यता कहते हैं। यह सनातन धर्म उस दुर्ग के समान था जिसमें असंख्य चारों धर्मों के सदृश चतुरङ्गिनी सेना—हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सिपाही—सुखपूर्वक फैल फूटकर एक साथ बिना भेदभाव के निवास करते थे। यह ऐसा अभेद्य गढ़ था कि जिसमें शत्रुगण प्रवेश करने का साहस ही नहीं कर सकते थे। यह ऐसा किला था कि इसमें बाहर के लोग आते ही आत्मसात् कर लिये जाते थे, इसी समाज में घुल मिलकर उसका अंग बन जाते थे। किन्तु काल की गति बड़ी बलवान् होती है। ऐसा अभेद्य दुर्ग भी जीर्ण होने लगा। ऐसा सुदृढ़ गढ़ भी निर्बल होने लगा। विदेशियों और विधर्मियों के निरन्तर आक्रमण से इसकी दीवारें भी खसकने लगीं। बल्लियाँ जीर्णशीर्ण हो गयीं। स्थान-स्थान से छतें गिरने लगीं। समय-समय पर कारीगर आते गये। वे अपनी शक्ति के अनुसार इसके जीर्णोद्धार का प्रयत्न करते गये। इसमें किसी ने सड़ी बल्लियों के स्थान में नयी बल्लियाँ लगायीं, किसी ने पच्चीकारी की, किसी ने चूना पोता, किसी ने खिसकी हुई दीवारों को सम्हाला। इनमें बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, चैतन्य, कबीर, पंजाब के दशगुरु, गुरु गोरखनाथ, शिवाजी, प्रताप, दयानन्द, विवेकानन्द आदि अनेकों संत महापुरुष हुए। उन्होंने इस हिन्दू समाज रूप ढहते किले के जीर्णोद्धार का यथाशक्ति प्रयत्न किया। किन्तु इतना भारी किला जिसकी सभी वस्तुएँ जीर्णशीर्ण हो गयी, कहाँ तक सम्हालते। किन्तु यहीं बहुत बड़ी बात है, कि

इतना प्राचीन गढ़ चाहे जीर्णशीर्ण दशा में ही सही, संसार के सम्मुख अभी ऊँचा मस्तक किये हुए खड़ा है। उसका मुख्य कारण इतने जीर्णोद्धारक सन्त, महात्मा और महापुरुषों का ही अवतरण है। इन सन्तों का अन्तिम कड़ी में हमारे देखते-देखते ये दो महापुरुष आये और चले गये। पहले तो केशवराव हेडगेवार और दूसरे थे हमारे गुरु गोलवलकरजी।

डॉ० हेडगेवार ने अनुभव किया कि हिन्दू जाति रूप इस जीर्णशीर्ण किले के जीर्णोद्धार के लिये ऐसे त्यागी विरागी व्यक्तियों के समूह की आवश्यकता है, जो घर-द्वार की चिन्ता से मुक्त आजीवन ब्रह्मचारी हों, जो गृहत्यागी, सन्यासी होते हुए भी साधु वेष से विमुक्त हो, क्योंकि वेष का भी बड़ा भारी अभिमान होता है। अतः ये अलिंग सन्यासी घरबार का चिन्तन छोड़कर सतत हिन्दू समाज के उत्थान का चिन्तन करते रहें। यही सोचकर उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। संघ की स्थापना काल से ही मेरा नागपुर में आना जाना आरम्भ हुआ था। तब तक हमारे गोलवलकर जी का संघ के रंग मंच पर पदार्पण भी नहीं हुआ। वे कहीं विद्यार्थी अवस्था में पढ़ते थे।

जैसा अधिसाशी अभियन्ता किसी भवन के जीर्णोद्धार के पूर्व उसका एक वृत्तचित्र (नकशा) बना लेता है और यह अनुमान लगाता है कि इसमें कहाँ-कहाँ सुधार करना है, क्या-क्या सामग्री लगानी है, उसका अनुमानित व्यय आँक लेता है। इसी प्रकार डॉक्टर साहब ने संघ की एक नींव खड़ी ही की थी तभी तक वे चल बसे। उनके उत्तराधिकारी के रूप में हमारे ये गुरु गोलवलकर जी आये। उन्होंने डाक्टर साहब के स्वप्नों को साकार ही नहीं किया किन्तु अपनी ओर से उसमें अनेकों सुधार करके इस गिरते हुए जीर्ण-शीर्ण किले को बचाने को जितनी उनकी बुद्धि में आये-सब कार्य किये। उन सब कार्यों की रीढ़ तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ था। रीढ़ को दृढ़ बनाये रखते हुए उन्होंने किले में भी जहाँ-जहाँ निर्बलता थी वहाँ-वहाँ उसके उपचार के सुदृढ़ आयोजन किये। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि ये उपचार उन्होंने हमारे जीवन में हमारे देखते-देखते हमारी जानकारी में ही किये।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उस विद्युत-गृह के सदृश है, जिसका काम निरन्तर विद्युत का उत्पादन करते रहना मात्र है। विद्युत उत्पन्न हो जाने पर उससे भले ही पुस्तकें छाप लो, चिकित्सा करो, खेती के लिये जल निकाल लो, आटा पीसने की चक्की चला लो, यात्रा के लिये मोटर रेल चला लो, शक्कर, कोयला, कपड़ा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कर लो। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रत्येक प्रान्त में शिविर लगाकर सहस्रों लाखों प्रशिक्षित स्वयंसेवकों का उत्पादन करता है। नगर-नगर, ग्राम-ग्रामों में दैनिक शाखाएँ

लगाकर संगठन को प्रगतिशील बनाये रखता है। सहस्रों लक्षों स्वयंसेवक ग्राम-ग्राम नगर-नगर, तहसील-तहसील, जिला-जिला, प्रान्त-प्रान्त, भाग-भाग, विभाग-विभाग तथा पूरे भारतवर्ष में घूम-घूमकर उसकी गतिविधियों का अवलोकन करते रहते हैं। देखिये कितना सुदृढ़ संगठन है। जितने अधिक सुशिक्षित स्वयंसेवक तैयार होते जाते हैं, उनके लिये उतने ही कामों का आयोजन किया जाता है। क्योंकि यह किला इतना जीर्णशीर्ण हो गया है कि इसमें अनन्त जीर्णोद्धारकों की आवश्यकता है। हमारे गोलवलकरजी की तीखी आँखों ने हिन्दू समाज की दुर्बलताओं का बड़ा सूक्ष्मता से, गहराई के साथ अवलोकन किया। जहाँ-जहाँ जैसी-जैसी आवश्यकताएँ प्रतीत हुई वहाँ-वहाँ उन्होंने उनके अनुरूप ही उपचार आरम्भ कर दिये। उनमें मनुष्यों को परखने की अद्भुत शक्ति थी। कौन व्यक्ति किस काम के लिये उपयुक्त है, यह समझकर वे उसे वैसा ही काम सौंप देते थे। स्वयं बड़े से बड़ा कार्य कर लेना कोई विशेष महत्व की बात नहीं हैं, क्योंकि मनुष्य में समस्त शक्तियाँ सन्निहित हैं। किस समय कौन सी शक्ति प्रबल हो जाय। स्वयं कार्य करने की अपेक्षा अन्यों से उपयुक्त कार्य करा लेना यह महान शक्ति है और यह शक्ति किसी विरले में ही होती है। शास्त्र का वचन है—कोई अक्षर ऐसा नहीं जो मंत्र न हो, कोई वस्तु ऐसी नहीं जो औषधि न हो और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो किसी न किसी काम के योग्य न हो, इतना होने पर भी योजक न हो तो व्यर्थ है। योजना करने वाला ही उनका यथायोग्य उपयोग कर सकता है। गुरुजी में कौन किस योग्य है, उसका उपयोग कहाँ और कैसे किया जा सकता है, इसकी उनमें अद्भुत क्षमता थी। वे लक्षों युवकों के प्रेरणा स्रोत थे और लक्षों युवक उनके संकेत पर प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत रहते थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व था कि विरोधी विचार वाले भी उनके शौर्य का लोहा मानते थे। एक बार जो उनके संसर्ग में आ गया, वह सदा-सर्वदा के लिये उनका हो गया। वे एक कार्यकर्ता निर्माण भवन के सर्वोच्च व्यवस्थापक थे। जिस निर्माणशाला में सर्वदा कार्यकर्ता ही निर्माण होते रहते थे और उन्हें निर्माण कर करके उपयुक्त स्थानों पर भेजते रहते थे। तभी तो उनकी प्रेरणा से अनेक संस्थाएँ अनेक भाँति की प्रवृत्तियाँ सम्पूर्ण देश में कार्यरत हैं और वे अपने-अंपने कायों को तत्परता के साथ कर रही हैं। इस हिन्दू जाति रूप दुर्ग के उद्धार हेतु उन्हें जो-जो भी उचित प्रतीत हुआ उसका शुभारम्भ अपने स्वयंसेवकों द्वारा करा दिया। जब उन्होंने अनुभव किया कि युवकों के संघ के सदृश बालिकाओं के लिये भी एक देशव्यापी संघ-संगठन की आवश्यकता है। तब उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदृश महिला सेविका संघ की स्थापना संघ संगठन से सर्वथा पृथक् की। उसमें संघ के स्वयंसेवक या कार्यकर्ता सम्मिलित नहीं हो सकते। वह महिलाओं का स्वतंत्र

संगठन है। उसके भी स्वतंत्र शिविर लगते हैं। उसकी भी प्रचारिका देश भर में दौरा करती रहती हैं और अपने संगठन को सुदृढ़ बनाती रहती हैं। इनके शिविर में समय-समय पर मैं गया हूँ।

जब उन्होंने देखा तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ कार्यकर्ता राजनीति में कार्य करने को समुत्सुक हैं। वे अनुभव करते थे, राजनैतिक कार्य हलके फुलके लोगों का कार्य है। इसमें स्थिरता नहीं, गम्भीरता नहीं, सिद्धान्त पालन की प्रवृत्ति नहीं। यह तो एक अवसरवादिता की प्रवृत्ति है। 'दुनियाँ' से ऐसे रहो जैसे लगि जाय दाव' यही राजनैतिक नेताओं का गुरुमंत्र है। फिर भी समाज को राजनीति की आवश्यकता तो रहती है। जो किसी राज्य में रहेगा, उसे राजनीति से सम्बन्ध जोड़ना ही पड़ेगा। अतः उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को राजनीति से सर्वथा अछूत बनाये रखते हुए ऐसे लोगों के लिये 'जनसंघ' की स्थापना करायी। सर्वप्रथम पं. दीनदयाल उपाध्याय, पं. अटल बिहारी वाजपेयी और एक महाराष्ट्रीय प्रचारक ये तीन ही प्रचारक जनसंघ में आये थे। इन तीनों ने ही ऐसी अखिल भारतीय संस्था खड़ी कर दी कि सबसे पुरानी राजनैतिक संस्था कांग्रेस भी जिससे स्पर्धा करती है, वह अनुभव करती है, कि हमसे दो-दो हाथ कर सकती है तो वह एक ही संस्था है भारतीय जनसंघ। विशेषता यह कि गुरुजी कभी जनसंघ के किसी अधिवेशन में गये नहीं। कहीं उनका नाम नहीं। कभी उनकी जय-जयकार नहीं। फिर भी जनसंघ उन्हीं की नीति का अनुसरण कर रहा है।

उन्होंने जब देखा, कि विदेशी समाचार समितियाँ हमारे समाचारों को तोड़-मरोड़कर विकृत करके देती हैं, भारतीयता से वे कोसों दूर हैं, तब उन्होंने एक भारतीय समाचार दातृ संस्था की आवश्यकता अनुभव की। हमारे परम सुलझे हुए श्री दादा आप्टेजी को यह कार्य सौंपा। आप्टेजी ने रात्रि-दिन परिश्रम करके "हिन्दुस्थान समाचार संस्था" को खड़ा किया। आज वह देश में समाचार बेचने वाली प्रथम श्रेणी की संस्था है, जो प्रेस ट्रस्ट आदि से भी लोहा ले रही है और भारतीयता के प्रचार प्रसार में निमग्न है।

जब उन्होंने देखा कि बिना प्रेस के हमारे भावों का प्रचार-प्रसार नहीं होगा, तो उन्होंने संघ की पुरानी नीति, जो समाचार पत्रों से दूर रहकर प्रचार की प्रवृत्ति को त्यागकर काम करने की थी, का परित्याग किया। देश की विभिन्न भाषाओं में उन्होंने दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ कराया। आज सैकड़ों ऐसे पत्र विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रहे हैं और उनकी विभिन्न स्वतंत्र संस्थायें उन्हें सुचारु रीति से चला रही हैं। राष्ट्र धर्म प्रकाशन संस्था से दैनिक 'नव भारत' साप्ताहिक 'पांचजन्य' पत्र तथा 'राष्ट्रधर्म' मासिक और विविध विषयों पर उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो

रही हैं और इन कामों को सर्वस्व त्यागी प्रचारक गण कर रहे हैं। ऐसी ही संस्थायें भारत की प्रायः सभी भाषाओं की हैं।

उन्होंने अनुभव किया कि ईसाई संस्थायें हमारे वनवासी बन्धुओं को बहकाकर विधर्मी तथा विदेशी भावापन्न बना रहे हैं तो वनवासी कल्याण संबंधी अनेक संस्थाओं का संगठन किया। जिनमें जसपुर का कल्याण आश्रम तथा मेघालय, आसाम आदि में वनवासियों में बहुत से प्रचारक कार्य कर रहे हैं।

उन्होंने स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजी से दीक्षा ली थी। वे स्वमी विवेकानन्दजी के विचारों से अत्यन्त ही प्रभावित थे, उन्होंने कन्याकुमारी के समुद्र के बीच में उस शिला पर, जिस पर बैठकर स्वामीजी ने शान्ति का अनुभव किया था, विवेकानन्द स्मारक खड़ा कराया। इस कार्य को हमारे एकनाथ रानाडेजी को सौंपा, जिसमें अब तक पचासों लाख रुपये लग चुके हैं। यह संस्था बिना किसी भेदभाव के हिन्दुओं की रक्षा कर रही हैं और ईसाई बनाये हुए हिन्दुओं को पुनः अपने पूर्व समाज में लाने के लिये प्रयत्नशील है।

जब उन्होंने देखा, ये ईसाई संस्थायें हमारे कोमल हृदय शिशुओं को शिक्षा के नाम पर भारतीयता से विमुख कर रही हैं। उन शिशुओं के हृदय में ईसाइयत की छाप बैठा रही हैं, तो उन्होंने सम्पूर्ण देश में सरस्वती शिशु मंदिरों की स्थापना करके छोटे-छोटे बच्चों में भारतीय भावना को उत्पन्न कराने का परम सराहनीय कार्य कराया। आज हमारे सम्पूर्ण देश में ऐसे सैकड़ों शिशु मंदिर चल रहे हैं, जिनमें प्रशिक्षित स्वयंसेवक शिशुओं को शिक्षित करने का कार्य कर रहे हैं। ये संस्थायें चुपचाप रचनात्मक कार्य कर रही हैं।

जब उन्होंने देखा प्रवासी भारतीयों में हिन्दुत्व का अभाव हो रहा है, वहाँ कोई प्रचार प्रसार के लिये यहाँ से जाता ही नहीं, तब हिन्दूभावना को जागृत करने उन्होंने विश्व भर के हिन्दुओं के लिये विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना करायी। हमारे दादा आप्टेजी "हिन्दुस्थान समाचार" को पाल-पोसकर बड़ा कर चुके थे, उसे अपने पैरों पर खड़ाकर चुके थे, अब विश्व हिन्दू परिषद का काम उन्होंने ही सम्हाला। देश के नगर-नगर ग्राम-ग्राम में उसकी शाखायें स्थापित करके अनेकों प्रचारक उसके प्रचार-प्रसार के निमित्त देश की विभिन्न प्रान्तों में दौरा कर रहे हैं।

उन्होंने अनुभव किया विश्वविद्यालयों तथा अन्य विद्यालयों में जब तक विद्यार्थियों में भारतीय भावनायें न भरी जायँगी, तब तक देश का उद्धार न

होगा क्योंकि विद्यार्थी ही देश के भावी निर्माता हैं, उन्ही पर देश की उन्नति-अवनति निर्भर है। अतः उन्होंने अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी परिषद् की स्थापना करायी जिसके स्थान-स्थान पर शिक्षा शिविर चलते हैं, और जिसमें सहस्रों शिक्षक नियमबद्ध कार्य कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी, समाज के किस वर्ग में कैसी आवश्यकता है, उसका वे अहर्निशि ध्यान रखते। उन्होंने देखा कि मजदूरों में भारतीयता और संगठन का अभाव है, तो उन्होंने मजदूर संघ की स्थापना करायी। जिसका काम श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी को सौपा, जो संस्था मजदूरों में सराहनीय कार्य कर रही है। कहने का सारांश यही है कि वे सभी वर्गों में, समाजों में सभी ओर से भारतीयता के प्रबल प्रहरी थे। उनकी दृष्टि से कोई वर्ग बच नहीं सका। नेपाल में उन्होंने कार्य करने अपने स्वयंसेवक भेजे। वे गीता के माध्यम से अपना प्रचार करते थे। कश्मीर में प्रजा परिषद् के नाम से उन्होंने कार्य कराया। उनकी दृष्टि सार्वभौम थी। वे भारतीय समाज का विघटन करके, नये समाज निर्माण के विरोधी थे। वे भारतीय परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखकर उसकी दुर्बलताओं को निकालकर उसे विशुद्ध बनाये रखने के पक्षपाती थे। वैसे तो जो भी उनके संसर्ग में आया वही यह अनुभव करता था, कि गुरुजी मुझसे ही सबसे अधिक स्नेह करते हैं। महापुरुषों की यही तो विशेषता है। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।

गोरक्षा के आन्दोलन में जो इतनी उग्रता आई वह उन्हीं का प्रभाव था। वे गोरक्षा के प्रबल पक्षपाती थे। उन दिनों गोरक्षा के प्रचार में कई संस्थायें लगीं थीं, अतः उन्होंने इधर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब उन्हें अनुभव हो गया कि ये नामधारी गोरक्षक ऐसे ही सट्टपट्ट हैं, तो उन्होंने गोरक्षा हस्ताक्षर, आन्दोलन छेड़ दिया और एक ही महीने में सम्पूर्ण देश से लगभग तीन-चार करोड़ हस्ताक्षर उन्होंने कराये और स्वयं ही उन्हें लेकर राष्ट्रपति के समीप गये। संसार के इतिहास में इतना बड़ा हस्ताक्षर आन्दोलन और कहीं नहीं हुआ।

भारत गोसेवक समाज से मतभेद होने पर जब लाला हरदेव सहाय ने "गोहत्या निरोध समिति" बनायी तो उन्होंने उसमें स्वयंसेवकों से सक्रिय सहयोग दिलाया। देश में सहस्रों की संख्या में उसकी शाखायें स्थापित करायीं, मथुरा, लखनऊ, पटना आदि में सत्याग्रह कराकर वहाँ सरकार को विवश करके कानून बनवाये।

पीछे जब सबके सहयोग से सर्वदलीय सभा बनी तो उसमें भी उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया। वे नाम के और श्रेय के इच्छुक नहीं थे। ५० सहस्र आदमियों को जेल में पहुँचाना, दस लाख की भीड़ एकत्रित करके गौ के नाम पर अभूतपूर्व प्रदर्शन करना यह उनकी प्रेरणा से उनके स्वयंसेवकों का ही

काम था। डींग मारने वाले तो उस सबका श्रेय स्वयं लेते हैं—हमने ऐसा किया, हमने इतने आदमी भेजे, किन्तु वास्तविक बात यही है कि इसमें मुख्य प्रेरणा गुरुजी की थी और उनके ही कारण सब कुछ हुआ। जब कुछ लोगों के विरोधी भाव देखकर उन्होंने हाथ खींच लिया तो आन्दोलन टांय टांय फिस्स हो गया।

जिस काम को वे भारतीयता के अनुरूप समझते, जिसमें हिन्दू समाज की उन्नति देखते, उस काम को कोई भी करे उसमें मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग देते और स्वयं अपने को उससे दूर रखते। श्रेय दूसरों को देते। स्वयं श्रेय लेने की बात उन्होंने कभी सोची ही नहीं। जो श्रेय प्राप्त करने के पीछे ही पागल हुए फिरते हैं, उन्हें श्रेय प्राप्त नहीं होता और जो श्रेय को लात मारकर उसे पीछे ढकेल कर जाते हैं, श्रेय परछायीं की भांति उनके पीछे-पीछे फिरता है। एक बार जिसे वे अपना लेते थे, जीवन भर उसको निभाते थे। "अंगीकृत सुकृतिनः परिपालयन्ति" का वे जीते-जागते ज्वलन्त उदाहरण थे।

मेरे ऊपर तो उनका अत्यधिक स्नेह था। जब से उनसे परिचय हुआ और जब तक वे जिये उनक स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उन्होंने कभी भी मेरे किसी आग्रह को टाला नहीं। मुझे जो दस लोग जानने-मानने लगे हैं, उसमें अधिकांश पर अंकित हैं। उन सबको क्रमशः लिपिबद्ध करूँ तो एक बड़ा पोथा बन जायगा, फिर भी वे पूरी जा सकेंगी या नहीं, इसमें सन्देह है। स्थान भय से यहाँ उनमें से कुछ को ही लिखता हूँ।

१

उनसे सर्वप्रथम परिचय भी विचित्र ढंग से हुआ। मैं श्री करपात्रीजी के कानपुर वाले यज्ञ में जा रहा था। इलाहाबाद स्टेशन पर उनसे भेंट हुई। वे भी उसी गाड़ी से प्रथम श्रेणी के डिब्बे से कानपुर की ही ओर जा रहे थे, मैं जब डिब्बे में चढ़ने लगा तो इनके दो प्रबल प्रहरी स्वयंसेवकों ने जो द्वार रोके खड़े थे। उनमें से एक तो उनके निजी सचिव डॉ० थत्ते थे और दूसरे और कोई थे। उन्होंने मुझे रोकते हुए कहा-"इसमें स्थान नहीं हैं आगे जाइये।" मुझे बड़ा बुरा लगा। इलाहाबाद स्टेशन पर और मुझे कोई इस तरह रोक दें। मैं उन्हें ठेलकर बलपूर्वक भीतर घुस गया। वहाँ देखता हूँ, एक पंचकेशी सफेद कुर्ता पहिने सौम्य मूर्ति बैठी हैं। उन्होंने बड़े आदर से मुझे अपने पास बिठाया। मैंने समझा ये कोई गुजरात के महन्त होंगे।

मैंने पूछा-"आप क्या करते हैं?"

बोले-"यही बच्चों को व्यायाम सिखाता हूँ।"

मैंने पूछा-"कहाँ रहते हो।"

वे बोले-"नागपुर।"

मुझे याद था डॉ० हेडगेवार ने व्यायाम सिखाने को एक संघ की स्थापना की थी। मैं उनकी नागपुर शाखा में गया भी था, पहिले के स्वयंसेवक मेरे पास आते भी थे। मैंने पूछा--"डाक्टर साहब कहाँ हैं?"

उन्होंने कहा-"उनका देहान्त हो गया।"

डॉक्टर साहब के एक चाचा थे, मेरे पास नागपुर आते थे, बड़ा प्रेम मानते थे। मैंने पूछा-"वे कहाँ हैं?"

वे बोले—"उनका भी देहान्त हो गया। मैं उन्हीं का काम देखता हूँ।" तब तक उत्तर प्रदेश में संघ का विशेष प्रचार नहीं था। वह नागपुर के आसपास ही सीमित था। उनकी सतत लगन से संघ का सम्पूर्ण देश में ऐसा अनुशासनबद्ध सुसंगठित प्रचार हुआ कि बौद्धकाल के भिक्षु संघों का स्मरण हो जाता है। एक बार किसी पत्र में उनकी प्रथम भेंट का विवरण छपा था। उसमें दो स्वयंसेवकों में भाऊराव देवरस का भी मैंने नाम दे दिया था कि स्यात् वे भी थे। दुबारा जब वे मेरे पास आये, तो देवरस ने हँसते हुए कहा-"मेरा नाम आपने झूठे ही दे दिया मैं आप पर मुकदमा चलाऊँगा।" तब आप हँसकर बोले-"मैं वकील हूँ मुकदमा चल ही नहीं सकता। अपने स्यात् कहा था निश्चित नाम नहीं लिया।"

२

उनमें भाषण करने की ऐसी अद्भुत शक्ति थी, जिस विषय को भी उठाते उसका चित्र खींच देते। वह नीरस भाषण नहीं होता था, उसमें बीच-बीच में सरसता का, हँसी विनोद का पुट रहता और वह विनोद ऐसा होता कि सभी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते हैं। जैसा अवसर देखते वैसा ही भाषण करते। हमने जब-जब उन्हें अपने नवसम्वत्सर उत्सवों पर बुलाया तब तब वे पधारे और उस समय एक भी राजनैतिक बात नहीं कही। सब अध्यात्म विषय की, भगवन्नाम माहात्म्य की बातें कहीं। वे नियमित सन्ध्यावन्दन करते थे और भगवन्नाम में उनकी निष्ठा थी।

३

वे जब भी प्रयाग पधारते हमारे यहाँ संकीर्तन भवन में अवश्य आते। मेरी इच्छा थी जितने हिन्दू भावना के प्रसिद्ध पुरुष हैं सब मिल-जुलकर कार्य करें। राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन मुझसे बड़ा स्नेह करते थे, सदा आश्रम में आते, कभी-कभी, महीनों यहाँ मेरे पास निवास करते। एक बार मैंने टण्डन जी से उन्हें यहीं मिलाया, किन्तु विधि बैठी नहीं। टण्डन कांग्रेस को छोड़ना चाहते नहीं थे। कांग्रेस में रहकर वे हिन्दुओं का उपकार कर नहीं सकते थे।

४

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ प्रमुख स्वयंसेवक चाहते थे संघ अब राजनीति में भाग ले। वे संघ को राजनीति से पृथक ही रखना चाहते थे। एक दिन मुझसे बोले-"महराज जी, कुछ लोग कहते हैं--"मैं राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बनना चाहता हूँ, तभी इतना भारी संगठन कर रहा हूँ। मैं स्पष्ट कह देता हूँ, मैं जीवन भर कभी कोई पद स्वीकार न करूँगा। ऐसे ही फक्कड़ बनकर मरूँगा। मुझे राजनीति से पद से क्या प्रयोजन ? मैं तो जनता जनार्दन की जो यत्किंचित् सेवा कर सकूँगा जीवन भर करता रहूँगा। और सेवा करते-करते ही इस शरीर का परित्याग कर दूँगा।" जैसा वे कहते थे वैसा ही करके दिखा दिया। अन्तिम श्वांस तक वे सेवा ही करते रहे।

५

वे इतने तेजस्वी थे, कि उनके सम्मुख किसी को उनके विचारों के विपरीत कहने का साहस नहीं होता था। एक दिन वे मेरे यहाँ आये। रज्जूभैय्या, दीनदयालजी, नानाजी देशमुख आदि सभी थे। ये सभी बन्धु मुझसे गुरुजी के नाते अत्यन्त स्नेह करते हैं। मुझसे सबने कहा-'महाराजजी! आप गुरुजी से कहिये अब संघ राजनीति में भाग ले।"

मैंने उनसे कहा-"महाराज! यह गण प्रचलन तो बहुत हुआ, अब इन लड़कों को राजनैतिक कार्यों में लगाइये।"

यह सुनकर वे गम्भीर हो गये और बोले-"अच्छी बात है महाराज! मैं सोचूँगा। श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी मेरे पास नागपुर आने वाले हैं, उनसे बातें करूँगा।" यह कहकर वे चले गये। इसके कुछ दिनों पश्चात् मैं गोवर्धन के पास कुसुम सरोवर पर श्रीमद्भागवत सप्ताह कर रहा था। वहाँ पं० दीन दयालजी उपाध्याय पहुँचे और बोले-"महाराज! संघ तो राजनीति से पृथक ही रहे। राजनैतिक कार्य के लिए एक पृथक ही संस्था बने उसका नाम 'जनसंघ' कैसा रहेगा। मैंने कहा-"यह बहुत अच्छा है?" वे मुझे उसका सभापति बनाना चाहते थे, किन्तु मैंने तो आरम्भ में ही पाँच प्रतिज्ञायें कर ली थीं। उनमें से एक यह थी कि किसी भी संस्था का कभी न तो सदस्य बनूँगा न कोई स्थायी पदाधिकारी ही। किसी सभा में किसी ने सभापति बना दिया यह दूसरी बात है। तब उन्होंने कहा-"सभापति के लिये कोई दूसरा नाम बताइये?" मैंने कहा-"अवागढ़ के रावसाहब कृष्णपाल सिंह को बना लो।"

वे बोले-"मेरा तो उनसे कोई परिचय नहीं है।"

मैंने कहा-"मेरा नाम ले लेना।"

तभी सर्वप्रथम उत्तर प्रदेशीय जनसंघ की स्थापना हुई। रावसाहब उसके सभापति हुए, दीनदयालजी मंत्री बने। इसके अनन्तर भारतीय जनसंघ बना। जिसके सभापति पं० श्यामाप्रसादजी मुखर्जी हुए और सभायें पहिले अखिल भारतवर्षीय बनती हैं, तब उनकी प्रान्तीय शाखायें बनती हैं। जनसंघ पहिले प्रान्तीय बना तब जाकर अखिल भारतीय बना। गुरुजी की यह कितनी भारी सूझ-बूझ थी। यदि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राजनीति में कूद जाता तो उसकी वैसी ही छीछालेदर होती जैसी अन्य राजनैतिक संस्थाओं को हो रही है। फिर वह नये कार्यकर्ता निर्माण में सक्षम नहीं होता।

एक बार मैं तीर्थयात्रा में गया। स्थान-स्थान पर स्वयंसेवकों ने मेरी बड़ी सहायता की। जब वे मुझे मिले तो मैंने कहा-"तुम्हारे स्वयंसेवकों ने हमारा बड़ा भारी स्वागत सत्कार किया।" तब आप बड़े उल्लास के साथ प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले-"मुझे बड़ी प्रसन्नता है, आपने अनुभव तो किया गाँव-गाँव में आपके प्रहरी बैठे हैं।"

६

जब हमने वृन्दावन में गोसेवा व्रत लेकर गौएँ चराना आरम्भ किया, तब भी आप कई बार वृन्दावन पधारे। एक बार तो आपको वृन्दावन के गोरक्षा सम्मेलन का उद्‌घाटन करने बुलाया तब आये और उद्‌घाटन करते हुए बोले-"बड़े लोगों के भवनों के बाहर द्वारपाल खड़े रहते हैं, वे ही किवाड़ों को खोलते हैं, उद्‌घाटन करते हैं। मैं भी आप सबका द्वारपाल हूँ इसलिए इसके किवाड़ों को खोलता हूँ।"

७

एक बार जब मैं वृन्दावन में था। उत्तरप्रदेश के उत्तरी जिलों के स्वयंसेवकों का शिविर वृन्दावन में लगा था। मैं भी शिविर में गया। मैंने कहा-"कल प्रसाद पाने आश्रम में आइयेगा।"

मेरे यहाँ प्रसाद पाने में उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती, मैं देखता था। मेरे यहाँ जितने उल्लास से पेटभर के वे प्रसाद पाते थे, इतना प्रसाद वे कहीं भी नहीं पाते थे। बोले-"कै आदमी जावें?"

मैंने कहा-"आप जितने चाहें साथ ले आवें।"

वे बोले--'हम तो ४०० से ५०० हैं।"

मैंने कहा-"तो सभी आइये।"

दूसरे दिन बड़े ठाठ के साथ गाजे-बाजे के साथ बाजे बजाते हुए गणवेश के साथ ४०० से ५०० स्वयंसेवकों के साथ समुपस्थित हुए और

बड़े प्रेम से प्रसाद पाया। उस दिन हँसते ही रहे। बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

८

जब हमारी तीर्थयात्रा रेल निकली तब आपने सम्पूर्ण देश के स्वयंसेवकों को आदेश देकर उसका जो अभूतपूर्व स्वागत सत्कार कराया, वैसा स्वागत-सत्कार 'न भूतो न भविष्यति' ही कह सकते हैं। काशी की शोभा यात्रा में ३।४ लाख यात्रियों से कम न होंगे। बम्बई में मैंने फोन कराया आप यहाँ आ आओ। तुरन्त वायुयान से पहुँचे और तीन दिनों तक मेरे साथ-साथ रहे। सभाओं में व्याख्यान दिये।

९

जब हमारा गोलोक उत्सव हुआ, तो उसमें २०।२२ सम्मेलनों में एक गोरक्षा सम्मेलन भी था, उसका हमने उन्हें अध्यक्ष बनाया। बड़े प्रेम से आये। उस समय डेढ़ महीने के उत्सव के लिये हमने झूसी से बहुत से मल्लाह बुलाकर बड़ा भारी फूँस का पंडाल बनाया था और मथुरा की एक कम्पनी ने उसे बहुत ही कलात्मक ढंग से सजाया था। आप उस पंडाल को देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और बोले-"मैंने जीवन में फूँस का इतना भारी, इतना सुन्दर पंडाल कभी नहीं देखा।" उस सम्मेलन में गोरक्षा पर जो आपने ओजस्वी भाषण दिया, उसके एक एक शब्द में गोभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी थी। चलते समय मैंने उनसे बहुत ही कड़ी-कड़ी बातें कीं, गौरक्षा के लिये सम्पूर्ण शक्ति न लगाने पर उन्हें कड़े शब्दों में फटकार बतायी। वे सभी बातों को बड़ी गम्भीरता के साथ शान्तिपूर्वक सुनते रहे और अन्त में बोले-"महाराज! हमें और भी तो बहुत से कार्य हैं। हम उन सबको छोड़कर केवल गोरक्षा आन्दोलन में ही अपनी शक्ति कैसे लगा सकते हैं फिर भी हमसे जो होगा, अब यथाशक्ति उसे करने का प्रयत्न करेंगे।"

हमारी वार्तलाप के समय "गोधन" के सम्पादक पं० विश्वम्भर प्रसाद शर्माजी समुपस्थित थे। पीछे उन्होंने मेरी बड़ी भर्त्सना की कि "आप इतने बड़े आदमी को इस प्रकार फटकारते हैं।"

मैंने कहा-"अपनत्व में ऐसा ही होता है। उसके पश्चात् उन्होंने गोरक्षा के लिये पूरा प्रयत्न किया।"

१०

मेरे अनशन के समय वे अत्यन्त ही व्यग्र रहे। वे बार-बार कहते-"महाराज ने हमें बताया तक नहीं, बिना सलाह किये इतना कठिन पग उठा

लिया। फिर भी हमारे अनशन-काल में उन्होंने अपने सभी कार्यों को स्थगित कराके समस्त कार्यकर्ताओं को इसी काम में लगा दिया। लगभग ५० सहस्र आदमियों को कारावास भेज दिया और दस लाख नर-नारियों का प्रदर्शन कराया जो आज तक गोरक्षा के नाम पर ऐसा प्रदर्शन कभी भी नहीं हुआ था। अनशन में मेरे प्राण बचाने का श्रेय उनको तथा श्रीमती जयदयाल डालमिया को ही है। मैं तो ३६ दिनों के पश्चात् एक प्रकार से मृतक ही हो चुका था। सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि मेरी मृत्यु हो गयी। श्री जयदयालजी की पत्नी ने रो-रोकर मुझसे बड़ी दीनता से कहा-"महाराज! गोरक्षा तो हो जायगी, आप अपने प्राणों को न दें, मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर थोड़ा रस ले लें।" मैंने उनके अत्यन्त आग्रह पर थोड़ा रस ले लिया। बम्बई या जहाँ भी वे थे सुनते ही तुरन्त वायुयान से मेरे पास आये। श्री भाईजी हनुमान प्रसादजी पोद्दार का आग्रह था कि अनशन किसी भी दशा में समाप्त न किया जाय, किन्तु इन्होंने दृढ़ता के साथ कहा-"महाराज! अनशन से गोरक्षा हो सकती तो मैं कब का अनशन करके प्राण त्याग देता। हम जीते रहेंगे, तो भगवत्कृपा से इसके लिये सतत् प्रयत्न करते रहेंगे। आप रस लीजिये और रज्जूभैय्या को आदेश देकर चले गये। कई बार अनशन के दिनों में वे आये। उस समय उनकी व्यग्रता देखते ही बनती थी। एक दिन तो रोकर बोले-'महाराज, मेरी ओर देखकर-मेरे ऊपर कृपा करके-इस अनशन को त्यागिये।"

११

अनशनकाल में पुलिस ने मुझे मथुरा जेल में बन्दकर दिया और प्रयाग के उच्च न्यायालय में मामला आने पर सरकार द्वारा अभियोग सिद्ध न होने पर मेरे ऊपर से अभियोग हटाकर मुझे नैंनी (इलाहाबाद) जेल से मुक्त कर दिया, तो मैं अनशनकाल में ही देहली गया। आप भी तुरन्त देहली पहुँचे गये। आप मेरे पास बैठे थे तभी तक अटलजी और दीनदयालजी आ गये। मैंने इन दोनों से कहा-"भैया! कुछ इस आन्दोलन में करो।"

उन्होंने कहा-"महाराज, हमारे सिर पर तो चुनाव है, इस समय आप अनशन स्थगित कर दें। पीछे आप जैसा कहेंगे वैसा हम करेंगे।"

मैंने कहा-"तुम लोगों को इसीलिये खिला-खिलाकर इतना मोटा किया है क्या कि तुम समय पर ऐसी बात करो।" यह सुनकर गुरुजी हँस पड़े। मैंने कहा-"ये लोग अनशन स्थगित करने को कहते हैं, क्यों आप भी कहते हैं?"

वे बड़ी गम्भीरता के साथ बोले-"मैं अभी तो नहीं कहता, किन्तु आगे चलकर मैं कहूँगा अवश्य।"

इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रयत्न करके मेरे प्राणों को बचा लिया। हम लोगों में आपस में ही मतभेद हो गया। मैं चाहता था गौरक्षा का सम्पूर्ण श्रेय मुझे ही प्राप्त हो जाय, दूसरे चाहते थे सब श्रेय हमें ही मिल जाय। गुरुजी श्रेय प्राप्ति से कोसों दूर थे। वे काम करना जानते थे, श्रेय दूसरों को देते थे। श्रेय से सदा दूर ही रहते थे। अतः वे इससे दूर ही रहे। श्रेय हममें से किसी को नहीं मिला। इतने लोगों की हत्या कराने का कलंक का टीका अवश्य हमारे सिर पर लग गया। अब गौरक्षा आन्दोलन का क्या होगा? समस्त परिस्थितियाँ हमारे प्रतिकूल ही हैं। सरकार यन्त्र-युग की ओर इतनी बढ़ गयी, कि उसने गौ बैलों की आवश्यकता को सर्वथा नष्टप्राय ही कर दिया है। यहाँ पूँजीपति भी भीतर-भीतर इसके पक्ष में नहीं। अल्पसंख्यक, कस्युनिस्ट सब इसके विरुद्ध हैं। इस प्रकार की परिस्थिति देखकर मैं चुपचाप बैठा भागवती-कथायें लिखकर कालक्षेप कर रहा हूँ। इस परिस्थिति में रहीम जी ने कहा है-

रहिमन चुप है बैठिये, देखि दिननि को फेर।
जब नीके दिन आवहीं, बनत न लगि है देर।

गोरक्षा का प्रबल समर्थक हमारे बीच से चला गया। देखो, अब दैव किसे इसका श्रेय प्रदान करता है। "ईसु काहि घीं दैई बड़ाई।" भगवान् के शब्दों में काल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। "कालं तावत् प्रतीक्षत।"

१२

अनशन के पश्चात् बद्रीनाथजी में जो संकीर्तन भवन बनवाया था, उसका उद्‌घाटन करने के लिये मैंने उन्हें बुलाया। यद्यपि वे देशसेवा के कार्यों में इतने व्यस्त रहते थे, कि उन्हें तीर्थयात्रा करने का अवकाश ही नहीं था। किन्तु उन्होंने कभी भी मेरे आग्रह को टाला नहीं। हरिद्वार में आते समय एक भेंट-वार्ता में उन्होंने कहा भी था। एक ने प्रश्न किया-"आपको बद्रीनाथ यात्रा की कैसे सूझी?" तब आपने कहा-"भैया! मुझे सेवा से इतना अवकाश कहाँ कि तीर्थ को जा सकूँ। मुझे तो विवश होकर जाना पड़ रहा है।"

सचमुच विवश होकर ही उन्होंने यह ८-१० दिन का अवकाश निकाला था। मुझसे कहा-"बद्रीनाथ ले ही चल रहे हैं, तो केदारनाथ के भी दर्शन कराते चलें।" मैंने केदारनाथ का सब प्रबन्ध कर लिया था। समिति के मंत्री का आदमी हमें लेने को रुद्रप्रयाग आ भी गया था किन्तु उसी दिन रुद्रप्रयाग में एक पहाड़ टूट पड़ा। कई बसें दब गयी, कई आदमी मर गये। केदारनाथ की सड़क टूट गयी। जाने का कोई भी साधन नहीं रहा। तब हम रुद्रप्रयाग से सीधे बद्रीनाथ गये। तीन मोटरें लेकर चले थे, एक बीच में बिगड़ गयी

लौटा दी। दो मोटरों में १०-१२ आदमी थे। दिल्ली के महापौर लाला हंसराजजी, रज्जूभैया, लिमयेजी, एक गुरुजी के गुरु भाई संन्यासी, दो एक प्रचारक बच्चों की भांति हँसते खेलते खाते पीते गये। मार्ग में मोटर बिगड़ गयी, तो आप भी हम सबके साथ उसे ठेलते ले गये। ब्रद्रीनाथजी में पांच दिन तक रहे। मैं उन्हें नित्य भागवत चरित की कथा सुनाता था। प्रसंग था भ्रमरगीत का। अब तक मैं उन्हें एक सामाजिक नेता के ही रूप में समझता था, किन्तु जितनी देर वे कथा सुनते, निरन्तर उनकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होते रहते थे। तब मैं समझा कि ये तो नारियल की भाँति है। 'ऊपर से तो दृढ़ कठोर दिखायी देने वाले और भीतर जिसमें स्वच्छ निर्मल नीर परिपूर्ण रूप से भरा हुआ हो' तभी मेरे मन में आया यदि संभव हो, तो मैं इन्हें एक बार सम्पूर्ण भागवतचरित सुनाऊ। बद्रीनाथ में उन्होंने बड़ी भक्ति भाव से भगवान् बद्रीनाथ का अभिषेक कराया। अपने माता-पिता तथा पूर्वजों को ब्रह्मकपाली में जाकर विधिवतू पिण्डदान किये। यह बात उन्होंने मुझे नहीं बतायी कि ब्रह्मकपाली पर मैंने अपना भी श्राद्ध कर लिया है। वे ब्रह्मकपाली मुझे बिना साथ लिये, मुझसे बिना कहे ही गये थे। वहाँ हम पाँच दिनों तक साथ रहे। वे पाँच दिन जीवन के अमूल्य क्षण थे।

१३

श्री बद्रीनाथजी से ५-६ मील दूर वसुधारा है। माणा गाँव से ३ मील ऊपर। एक दिन मुझसे बिना कहे लालाजी, लिमये और रज्जूभैय्या आदि को लेकर वसुधारा देखने चले गये। माणा तक तो जीप में गये। माणा से आगे पैदल जाना था। मील डेढ़ मील तो जैसे-तैसे चले गये। आगे जाकर सांस फूलने लगी। वसुधारा मील डेढ़ मील ही रह गयी थी। नहीं चला गया, लौट आये। आकर मुझसे कहने लगे-"महाराज, आज मुझे अनुभव हुआ कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। मुझे एक पैर चलना भारी हो गया।"

मैं बहुत अप्रसन्न हुआ। मैंने कहा-"आपको मुझसे कहकर जाना था। मैं साथ चलता। माणा से घोड़ा ले लेते। सब प्रबन्ध हो जाता।"

तब बोले-"इसीलिये तो मैंने आपसे कहा नहीं। कहता तो आप अवश्य चलते, आपको कष्ट होता।" इस प्रकार वह आठ दस दिन की यात्रा बड़ी ही सुखद रही। हमें तो बद्रीनाथ संकीर्तन भवन में भागवत सप्ताह कराना था, अतः हम तो वहीं रह गये और आप लौट आये। सर्दी लगने से नीचे आने पर आपके स्वास्थ्य पर इस यात्रा का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

१४

पिछले वर्ष माघ में जब सटीक भागवतचरित छप गया, तो उसके विमोचन के लिये उन्हें बुलाया। समय नहीं था। बोले-"महाराज से कहो

आधे घण्टे में सब समाप्त कर दें।" मैंने वैसा ही किया। २५ मिनट में ही समारोह को समाप्त किया। बड़े प्रसन्न हुए बोले-"आज तो महाराजजी ने हमें भी पीछे हटा दिया। समाप्ति के पश्चात् जब रामानुज धन्यवाद देने लगे-तब तुरन्त उठकर खड़े हो गये। बोले-"देखो, ये शिष्टाचार की बाते मत करो। घर में शिष्टाचार नहीं बरता जाता। यह तो मेरा घर है। ऐसी शिष्टाचार की बातें करोगे, तो मैं कभी नहीं आऊँगा।" मैंने कहा-"चाय पीकर जाना।" पानी गरम रखा था कहा-"मैं चाय बनाना जानता हूँ।" अपने आप चाय बनायी पीकर चले गये।"

चाय उन्हें कोई जितनी बार पिला दे उतनी ही बार पीते थे। पीछे लड़कों ने उनकी चाय पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। दिन में ३-४ बार के अतिरिक्त उन्हें चाय पीने को नहीं देते थे। उस दिन मेरे साथ भोजन करने आये। भोजन करके रज्जूभैया ने कहा-"चलिये, चलिये वहाँ का कार्यक्रम करना है।" मैंने कहा-"चाय तैयार है पीकर जाना।"

रज्जूभैय्या ने कहा-"नहीं, नहीं चाय वाय कुछ नहीं। अब तो चलना ही है चलिये चलिये।" वे बार-बार चलने का आग्रह करने लगे।

यह सुनकर भी आप कथामण्डल के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गये। रज्जूभैय्या चलने को बार-बार आग्रह कर रहे थे। तब आप हँसकर बोले-"आपकी बात हमने सुन ली है। आपको जो कहना था। वह कह चुके। अब कृपया चुप भी होंगे या नहीं?"

फिर मुझसे कहने लगे--"देखिये, महाराज! तैयार हुई चाय को छोड़कर जाना बड़ा असकुन होता है। एक बार की बात है। नागपुर में चाय तैयार थी। स्वयंसेवक शीघ्रता कर रहे थे, चलिये, चलिये, गाड़ी छूट जायगी। हम चाय को छोड़कर चल दिये। स्टेशन पहुँचते-पहुँचते गाड़ी छूट गयी। जैसे तैसे एक टैक्सी की, वह भी आधे मार्ग पर जाकर बिगड़ गयी। उसे बनाते रहे। पहुँचना था, ६ ५जे। भूखे प्यासे रात्रि के दो बजे पहुँचे। इसलिए तैयार चाय को कभी छोड़ना नहीं चाहिये।"

इतने में ही चाय बनकर आ गयी। प्रेमपूर्वक चायपान करके चले।

जहाँ भी मैं होता वे मेरे पास प्रसाद पाने अवश्य आते। एक दिन सायंकाल में दो तीन मोटर लेकर वृन्दावन आश्रम में आये। मैंने सबके लिये शीघ्रता से भोजन बनवाया। उनसे कहा तो वे बोले--"मैं तो एक ही बार भोजन करता हूँ।"

मैंने कहा-"भोजन मत करो। प्रसाद ले लो। देखो, हमारे यहाँ वृन्दावन के चार ठाकुर प्रसिद्ध हैं। उन चारों की चार प्रकार की प्रसादी वस्तुएँ बहुत

विख्यात हैं। श्री बाँके बिहारी जी का अँघौटा दूध, श्रीराधाबल्लभजी का दूध-भात, श्रीरंगजी की खीर और श्रीराधारमणजी की कुलियों में भरी हुई रबड़ी। श्री राधारमणजी के मंदिर से आज की ही भोग लगी हुए कुलियाँ आई हैं। थोड़ी ले लें। बथुआ का साग सर्वश्रेष्ठ साग माना जाता है, उसके सागराज, राज साग, वास्तु, रेचक, जावक आदि अनेक नाम हैं, उसकी थोड़ी भुजिया लीजिये।"

आप बोले-"हमारे यहाँ तो बथुआ होता नहीं। जब वह रेचक है, तो मुझे क्यों देते हैं, मुझे तो वैसे ही रेचन होता है।"

मैंने कहा-"वैसा रेचक थोड़े ही है। आप देखिये कैसा स्वादिष्ट है।"

तब मान गये। बाँके बिहारी का प्रसाद पाया। राधारमणजी की कुलिया खाकर बड़े प्रसन्न हुए। बथुए की भुजिए की भी बहुत प्रशंसा की। तब आप ने रज्जूभैय्या, थत्ते तथा लाला हंसराज जी से कहा-"तुम लोगों ने क्या खाया, पूड़ी साग खाया होगा, हमने तो वे अद्भुत-अद्भुत पदार्थ खाये कि हम तो कई दिनों के लिये निवृत्त हो गये।"

मैंने कहा-"नहीं, इन सबको भी श्रीराधामरण की कुलियाँ तथा अन्य प्रसाद मिले हैं।"

वे बड़े प्रसन्नचित्त तथा हँसमुख थे। प्रसाद पाने सदा १०।२० आदमियों को साथ लेकर आते। अकेले कभी नहीं आते थे। मुझे स्मरण नहीं कभी वे आये हों और उनके साथ रज्जूभैय्या न हों। थत्ते तो उनके निजी सचिव ही थे। जब थत्तेजी हुचकी रोग से बीमार हुए तब एक बार किसी दूसरे को साथ लेकर आये थे, नहीं तो थत्तेजी छाया की भांति उनके साथ ही रहते।

जब मैं चलते-चलते कोई लड्डू पेड़ा मिठाई आदि देता तो थत्ते तथा दूसरे लड़के उन्हें ले-लेकर जेबों में भर लेते। तब आप हँसते हुए कहते-"महाराज! देखो, इन लोगों की चालाकी, खाते भी हैं और आगे के लिये तोसा भी बाँधकर ले जाते हैं।"

अपनें देहली के वसन्त नगर संकीर्तन भवन में भी जब मैं वहाँ रहता तब वे अवश्य वहाँ प्रसाद पाने आते। लाला हँसराजजी तथा माधवजी मुले और भी १०-२० आदमी उनके साथ रहते। एक दिन मैंने हलुआ पूड़ी आदि बनवाये। सूजी नहीं मिली तो आटे का ही हलुआ बनवाया। बड़े प्रेम से यथेष्ट मात्रा में हलुआ खाया।

मैंने कहा--"आज आप सबके अनुकूल भोजन नहीं हुआ होगा?" बोले "आज तो सबसे अनुकूल भोजन हुआ है। मुझे वैद्यों ने खाने को हलुआ ही

बताया है, सो भी सूजी का नहीं आटे का आज तो मेरे बहुत अनुकूल भोजन हुआ।"

तब से जब भी बसन्त नगर संकीर्तन भवन में प्रसाद पाने आते, लाला हंसराजजी स्मरण दिलाते-"महाराज, आटे का हलुआ नहीं भूलियेगा।" मैं कहता-"मुझे स्मरण है आप निश्चिन्त रहें।" जब बद्रीनाथ गये, तब भी नित्य आटे का हलुआ बनवाकर सबसे पहिले जलपान को मैं भिजवाता और आप सभी साथियों के साथ हँसते-हँसते प्रेमपूर्वक पाते थे।

हमारे साथ अनशन में देहली के एक आहूजा भी थे। उनका अनशन-काल में ही संकीर्तन भवन वंशीवट वृन्दावन में स्वर्गवास हो गया था। उनके पत्नी और एक मात्र पुत्र था। वह मध्य प्रदेश में कहीं ओवरसियर थे। उसकी माँ बार-बार मुझसे आकर कहती मेरे लड़के को किसी तरह देहली बुलवा दो। दिल्ली के महापौर से कहकर उसकी यहीं कहीं नौकरी लगा दो। मैंने लाला हंसराजजी को कई बार लिखा। कोई स्थान खाली न होने से वे नौकरी न दे सके होंगे। वह फिर मेरे पास आकर रोने लगी। मैंने कहा-"नौकरी तभी लगेगी जब जगह खाली हो।" वहाँ कोई एक व्यक्ति और बैठा था उसने कहा-"आजकल गुरुजी आये हैं, उनको आप एक पत्र लिख दें, वे अवश्य प्रबन्ध करा देंगे।"

यह सुनकर वह भी मेरे पीछे पड़ गयी गुरुजी को आप अवश्य पत्र लिख दें। मैं ऐसी छोटी-मोटी बातों के लिये उन्हें कभी पत्र नहीं लिखता था, किन्तु जब वह पीछे ही पड़ गयी तो मैंने हँसी-हँसी में एक पत्र उन्हें पुराने उर्दू ढंग की शैली में लिख दिया।

"गुजारिस यह है कि यह आहूजा की विधवा चाहती हैं उसके लड़के को यही कहीं नौकरी मिल जाय। यहाँ के लोगों से कहा वे अभी तक कुछ कर न सके। इसलिये अब हम हाईकोर्ट में अपील करके यह दरखास्त देते हैं कि सनद रहे और वक्त जरूरत काम आवे। फकत्। दस्तखत पिरभूदत्त बकलमखुद।"

इस पत्र को पढ़कर वे बहुत हँसे। वहाँ अटलजी, रज्जूभैय्या भी बैठे थे। रज्जूभैया से पूछा-"महाराजजी ने यह बकलमखुद क्या लिखा है?"

रज्जूभैया ने कहा-"पहिले जब दफ्तरों में उर्दू चलती थी, तब अर्जियाँ ऐसे ही लिखी जाती थीं। अर्जी लिखने वाला दूसरा होता और देने वाला दूसरा होता तो लिखने वाला लिखता दस्तखत अमुक और लिखने वाला आगे लिखता बकलम अमुक अर्थात् अमुक की लेखनी द्वारा यह प्रार्थना पत्र लिखा गया। यदि प्रार्थना पत्र देने वाला स्वयं ही लिखता भी तो आगे लिखता

दस्तखत अमुक और बकलम खुद। अर्थात् प्रार्थना पत्र भेजने वाले ने स्वयं ही अपनी लेखनी द्वारा इस प्रार्थना पत्र को लिखा भी है।"

तब तक अटलजी बोल उठे-"महाराजजी ने हाईकोर्ट गलत लिखा है। हाईकोर्ट वाले तो हम यहाँ बैठे ही हैं। उन्हें सुप्रीम कोर्ट लिखना चाहिये था।"

उसी दिन मेरे यहाँ उन्हें प्रसाद पाने भी बसन्तनगर आना था। आये और आकर बोले-"महाराजजी! आपका प्रार्थना पत्र मिल गया था, किन्तु उसमें एक अशुद्धि थी।"

मैंने पूछा-"क्या अशुद्धि थी?"

वे बोले-"आपको हाईकोर्ट न लिखकर सुप्रीमकोर्ट लिखना चाहिये था।"

मैंने अपने कान पकड़कर कहा-"हाँ, यह तो गलती हो गयी। सुप्रीम कोर्ट में ही हमारी अर्जी की सुनवाई हो।"

यह सुनकर वहाँ जितने भी बैठे थे सब के सब हँसने लगे। ऐसे थे वे विनोदप्रिय तथा सबका मन रखने वाले हँसमुख।

१८

उनमें मिथ्याभिमान का तो लेश भी नहीं था। हमारे ही यहाँ के साधक विद्यार्थी जब साधु-सन्यासी का वेश बना लेते हैं या किसी महन्त अथवा जगत्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तो एकान्त में तो साष्टांग प्रणाम करते हैं। किन्तु जब अपने शिष्य भक्तों के बीच में मिलते हैं, तो उन्हें प्रणाम करने में भी लज्जा का अनुभव होता है, ऐसा वर्ताव करते हैं मानों हम उनसे परिचित ही नहीं। उनका इसमें कोई दोष नहीं यह जैवधर्म है। मनुष्य में अपने अनुयायियों के सम्मुख अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, किन्तु उनमें यह बात नहीं थी। उस दिन मालवीयजी के निधन पर संघ की ओर से काशी टाउन हाल में शोक सभा थी। यहीं प्रयाग से हमें और उन्हें जाना था। मुझे उन्होंने उसका अध्यक्ष बनाया था। मुझसे कह गये "मैं चलता हूँ प्रबन्ध करूँगा, आप आइयेगा।"

बड़ी भारी सभा थी। पचासों सहस्र नर-नारी एकत्रित थे। सभा खचाखच भरी थी। मैं गया, उठकर माला पहिनाई सबके सम्मुख साष्टांग प्रणाम किया। उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था। जब भी मिलते सबसे प्रथम दौड़कर पैरों में सिर टिका देते। ऐसे विनयी निरभिमान जिनके सम्मुख हम कुछ भी नहीं थे, उनका भी इतना अधिक आदर करने वाले व्यक्ति अब कहाँ मिलेंगे?

जब महामना मालवीयजी की जन्मशताब्दी मनायी गयी और उस समय मैंने अपनी लिखी हुई, 'मेरे महामना मालवीयजी और उनका अन्तिम संदेश'

नामक छोटी-सी पुस्तक का तीसरा संस्करण छपाया, तो उनसे भी दो शब्द लिखने को मैंने कहा। वे महामना मालवीयजी के अनन्य भक्तों में से थे। तुरन्त उन्होंने अपने हाथों से यह श्रद्धांजलि लिखकर भेजी जिसके एक-एक शब्द से उनका हिन्दू जाति के प्रति अनुराग फूटा पड़ता है। वे हिन्दुओं को दब्बू देखना नहीं चाहते थे। वे उन्हें सदा अपने कर्तव्य पर डटा हुआ देखना चाहते थे।

महामना मालवीयजी को
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकर) की श्रद्धांजलि

परमादरणीय महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी की जन्मशताब्दी बड़े समारोह से सर्वदूर देश भर में मनायी जायेगी। इस पुनीत अवसर पर मेरे महामना मालवीयजी तथा उनका अन्तिम संदेश पर छोटी सी किन्तु अतीव भावगर्भी पुस्तिका का तृतीय संस्करण प्रसिद्ध होना अतीव समयोचित है। श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी जैसे भगवद्भक्त के पवित्र कोमल हृदय से यह उत्स्फूर्त श्रद्धांजलि अभिव्यक्त हुई है, इतना ही इस पुस्तिका की महत्ता को समझने के लिये पर्याप्त हैं। अन्तिम सन्देश सदैव हिन्दू जाति के लिए मार्ग-दर्शक रहेगा। तदनुरूप कार्य करने से हिन्दू समाज निश्चित ही सर्वतोन्मुखी प्रगति कर स्वाभिमानी तथा निरापद जीवन बना सकेगा। अपनी प्रदीर्घ निःस्वार्थ सर्वस्पर्शी राष्ट्रसेवा की अनुभूति का निचोड़ इस सन्देश में उन्होंने सबको दे रखा है। श्री भगवान की कृपा से इस अमृतमय सन्देश को ग्रहण कर हिन्दू समाज अमरत्व प्राप्त करे।

महामना पं० मालवीय का मैं भी, अल्पांश में ही क्यों न हो, कृपापात्र रहा हूँ। अल्पांश में कहने का कारण यह है कि उनकी कृपा की महक मेरे चारों ओर उमड़ते रहते हुए भी मैं अपनी सीमित क्षमता के कारण उसका कुछ अंश ही ग्रहण कर सका। उनसे मैंने कार्य की प्रेरणा पायी है और जिन श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन प्रकाश से मेरे जीवन को योग्य दिशा का कुछ ज्ञान हुआ उनमें अनन्य सामान्य महत्व महामना पं० मालवीय जी के आदर्श जीवन का ही है। असामान्य बुद्धि, गहन ज्ञान, सात्विक सरल जीवन, अमोघ कर्तत्व-वक्तृत्व, अथाह स्नेह, दृढ़ धर्मश्रद्धा, अटूट भगवद्भक्ति, राष्ट्र हितदायित्व, महान् कर्मयोगी होने के कारण सब विषम स्थितियों में भी मन संयम, निर्लोभता, निःस्वार्थता, दुराग्रह, अहंकारराहित्य आदि असंख्य गुणों का एक ही व्यक्ति में समुच्चय दुर्लभ है। वह उनके जीवन में व्यक्त हुआ था। इसी कारण उनका व्यक्तित्व अतिमानवी दैवीभाव से प्रकाशित हो रहा था।

जिसकी मनोमोहिनी आभा उनके मुख मण्डल से चतुर्दिक आलोक प्रसारित करती थी। उसी प्रकाश की एक अति छोटी सी किरण मुझमें प्रवेश कर गयी, ऐसा मुझे नित्याभास होता है और उसी के तेज में अपना पथ देखता हुआ मैं भी प्रभुकृपा से चल सक रहा हूँ।

मेरे महामना मालवीयजी के पठन से अपने समाज–आबाल वृद्ध सब बन्धु उस दिव्य ज्योति को अपने अन्तःकरण में समाकर समाज राष्ट्र सेवाव्रती बन सकेंगे। वैसे वे बने और उनके अन्तिम सन्देश को आदेश जानकर समाज जागृत, स्वाभिमानी, संगठित, शक्तिशाली, बनाने में जीवन सर्वस्व से जुट जायँ। यही इस पवित्र अवसर पर परम कृपालु सर्वशक्तिमय श्री भगवान् के चरण–कमलों में प्रार्थना है। इतिशम्।

नागपुर
मार्गशीर्ष शु० २, संवत् २०१८ मा० स० गोलवलकर

१६

गोरक्षा आन्दोलन में जब मुझे, श्रेय के भूखे को, श्रेय नहीं मिल सका, तब सोचा–''चलो, अब भागवती कथा के शेष खंडों को ही लिखकर पूरा करो।'' ६६ खण्ड लिखकर मैं गोरक्षा आन्दोलन में लग गया और लगभग दस वर्षों तक लेखनादि सब कार्य बन्द करके इसी काम में लगा रहा। देश के सभी प्रान्तों में गया। अब जब आपस के ही लोग चाहने लगे कि मैं ही अकेला श्रेय को लेकर न पचा जाऊँ। हमारी बपौती पर यह ब्रह्मचारी अधिकार न जमा ले। इतने दिन से आन्दोलन हम कर रहे हैं। बरात हमने सजाई और दुल्हा आकर यह बन बैठा। तो मैंने सोचा–''क्यों अपने ब्रह्मचारी के नाम को बट्टा लगाऊँ जिन्हें दुल्हा बनना हो वे ही बनें। मैं तो अब भागवती कथा के शेष खण्डों को झूसी में रहकर पूरा करूँगा।'' यह सोचकर मैं झूसी आ गया और गीता के ऊपर लिखने लगा।

भागवती कथा जबसे प्रारम्भ हुई है तबसे उसकी यह नींति रही है कि उसके कवर के चतुर्थ पृष्ठ पर किसी विद्वान्, देशभक्त, नेता या साधू सन्त की एक छोटी–सी सम्मति छपा करे। मैंने सोचा–''सत्तरवें खण्ड में अब के गुरुजी गोलवलकरजी की सम्मति रहे। उनको मैंने पत्र लिखा। उनका स्वभाव था, मैं उन्हें पत्र लिखता, तो वे उसका स्वयं ही उत्तर देते थे। इससे मैं उन्हें बहुत ही कम पत्र लिखता था। फिर भी उनके लिखे मेरे पास अनेको पत्र आये। अपने अपरिग्रही स्वभाव से मैं उनका संग्रह न कर सका। सम्मति के रूप में जो उनका पत्र आया। वह बहुत लम्बा था, वह किसी खण्ड में छप भी चुका है वह पत्र इस प्रकार है–

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक परमपूज्य श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर (श्री गुरुजी) की भागवती कथा पर शुभ सम्मति-

लगभग एक वर्ष पूर्व की बात है। श्री बदरीनारायण क्षेत्र में श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज ने संकीर्तन भवन का निर्माण कराया था और उसका उद्घाटन मुझे ही करना चाहिये। ऐसी उनकी इच्छा थी। श्री महाराजजी की इच्छा को आदेश मानकर मैंने श्री बदरीनाथ की यात्रा करने का निश्चय किया। सोचा कि वर्षों की उत्कट इच्छा पूर्ण करने के लिये परम कृपालु श्री बदरीनाथ ने ही यह संयोग बनवाया होगा और अपने अंतरंग भक्त श्री ब्रह्मचारीजी महाराज को मुझे भवन के उद्घाटन करने के हेतु निमन्त्रित करने की प्रेरणा दी होगी। इस कार्यक्रम का निमित्त बनाकर मुझ पर श्रीभगवान् ने दया कर मुझे अपने पास खींचकर ले जाने का मेरे लिये भाग्य का संयोग प्राप्त कर दिया। अकारण करुणा करने का यह पवित्र खेल खेलकर मुझ पर अपना वरदहस्त मानों रख दिया।

श्री महाराजजी की सन्निधि में यात्रा करने के आनन्द का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। श्री बदरीनाथ पहुँचकर पाँच रात्रि वहाँ भगवद्चरणों में रहने का सद्भाव प्राप्त हुआ और श्री महाराजजी के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के कुछ अंश का विवरण सुनने का असीम सुख प्राप्त कर सका। भगवान् श्रीकृष्णजी के मथुरा चले जाने के कारण शोक विह्वल गोपियों और विशेषकर नन्द बाबा और यशोदा मैया की भाव विभोर अवस्था का उनके द्वारा किया हुआ वर्णन पत्थर को पिघला सकने वाला कारुण्य रस का उत्कट आविष्कार था। उनकी सान्त्वना देने के लिए श्री भगवान् के द्वारा प्रेषित उद्धवजी के आगमन पर गोप, गोपी, यशोदा माई आदि की स्थिति उनकी भावनाएँ उनका उद्धवजी के साथ हुआ सम्भाषण श्री ब्रह्मचारीजी के श्रीमुख से सुनते-सुनते मन एक सुखद वेदना का अनुभव कर द्रवित हो जाता था। इस अनुभव का वर्णन किस प्रकार करूँ?

यह मंगल अनुभव सब लोगों को प्राप्त होना कितना अच्छा होगा ऐसा विचार मन में उठता रहा और इसका समाधान भी प्राप्त हुआ है। पूज्य श्री ब्रह्मचारीजी ने अपनी मधुर भावनी भाषा में श्रीमद्भागवत को सरल हिन्दी में प्रसिद्ध करने का संकल्प किया था और उसके अनेक खण्ड प्रकाशित भी हो चुके थे। इसका पुनः स्मरण हुआ जब श्रद्धेय श्री महाराजजी का कृपा पत्र मुझे प्राप्त हुआ कि श्रीमद्भागवती कथा लेखन का कार्य जो बीच में रुक-सा गया था, उन्होंने फिर प्रारम्भ कर दिया है और अब ७०वाँ खण्ड छप रहा है। श्री महाराजजी ने उसकी प्रस्तावना के रूप में मुझे कुछ लिखने का आदेश दिया। मुझे मेरी अयोग्यता का कुछ ज्ञान तो अवश्य है। अतः मैं निश्चय नहीं

कर सका कि मुझे क्या करना उचित होगा। किन्तु श्री महाराजजी का आग्रहपूर्ण और एक पत्र आने पर यह धृष्टता करने बैठा हूँ।

इसमें मेरा एक ही काम है। सब बन्धुओं से, माताओं से मैं नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि श्री ब्रह्मचारीजी की यह 'श्रीमद्‌भागवती कथा' अपने पास रखें उसका अध्ययन-मनन करें। मूल श्रीभागवत महापुराण समझना सबके लिए सम्भव नहीं है। पंडितों की विद्वता की 'भागवते' परीक्षा होती है, यानि जो श्रीमद्‌भागवत रहस्य समझ सके वही विद्वान, वही पंडित कहलाने योग्य माना जा सकता है, ऐसा परम्परा से अपने यहाँ विश्वास है। 'श्रीमद्‌भागवत की रहस्य की गुणता इससे अभिव्यक्त होती है। जहाँ पंडितो की बुद्धि कुण्ठित होती है वहाँ सामान्य श्रद्धालु वाचक की क्या स्थिति होगी? यह समझना सरल है। फिर आजकल देववाणी संस्कृत के अध्ययन की उपेक्षा होने के कारण और भी कठिनाई उत्पन्न हुई है। ऐसे सब बन्धु क्या श्रीमद्‌भागवत को समझने से वंचित ही रहें? यह होना उचित नहीं है। श्रीमद्‌भागवत तो सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के परिपाक पर उत्पन्न होने वाली अद्वैत भक्ति का आधार है। श्री भगवान की वह शब्दवपु ही है। उसके ज्ञान से वंचित रहने के समान मनुष्यका अन्य दुर्भाग्य हो नहीं सकता। इस दुर्भाग्य से रक्षणा कर सर्वसामान्य मनुष्य को श्रीमद्‌भागवत का रहस्य सुगम भाषा में बनाना श्रीमद्‌भागवत में अभिव्यक्त ज्ञान भगवत्स्वरूप तथा विशुद्ध पराभक्ति का बोध सबको अपनी बोली के माध्यम से प्राप्त करा देना आवश्यक है और यह केवल सूक्ष्म भाषानुवाद के रूप में न होकर उत्कट भक्ति भाव से होना आवश्यक है। ब्रह्मचारीजी भगवद्‌भक्ति में नित्य लीन रहते हैं। अतः उनके मुख से निकलने वाली सहज वाणी विशुद्ध भक्ति के मधुर रस से आर्द्र रहती है। ऐसा मृद मधुर सरस भाषा में श्रीमद्‌भागवत महापुराण रहस्य सबको अवगत करा देने के लिए वे कृत संकल्प है। अष्टोत्तरशत खण्डों में ग्रंथ पूर्ण करने की उनकी योजना है। उसमें से यह ७०वाँ खण्ड है। शीघ्र ही शेष खण्ड भी प्रकाशित होंगे और सामान्य सीधे-साधे भोले किन्तु भक्ति की चाह रखने वाले असंख्य श्रद्धालु बन्धुओं की अभिलाषा पूर्ण होगी ऐसा मुझे विश्वास है। परम मंगल अकारण करूणामय दयाधन श्री भगवान् की असीम कृपा से उनकी साक्षात मूर्ति ही श्री भागवती कथा के शब्द देह को धारण कर प्रकट हों और संसार के तप्तजनो कों शान्ति प्रदान करें। इस हेतु उनके चरण-कमलों में मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ।

केवल प्रस्ताविक के नाते अधिक लिखना मेरे लिये अशोभनीय होगा। वस्तुतः मेरा यह लिखना भी सामान्य छोटे से दीपक से सहस्र राशि सूर्यनारायण को प्रकाशित करने की चेष्टा के समान हास्यास्पद है। श्री

महाराजजी की आज्ञा का पालन करना, इसी एक उद्देश्य से यह धृष्टता की है, जिसके लिये सब श्रेष्ठ भक्त वाचक वृन्द से क्षमा याचना करता हूँ।

मा. स. गोलवलकर

१७

उनमें कितनी क्षमा थी, ऐसी क्षमा अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। तभी तो वे इतने भारी परिवार का निर्वाह करते थे। वे किसी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करते थे। उनका सिद्धान्त था तुम जहाँ रहो, वहीं अपने सिद्धान्तों का पालन करते हुए स्वतंत्रतापूर्वक काम करो। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रशिक्षित स्वयंसेवकों को विभिन्न क्षेत्रों में जहाँ जिसकी आवश्यकता है, जैसी जिसकी रुचि है, वहाँ कार्य करने को भेज देते थे और उस पर अपना कोई अंकुश नही रखते थे। किन्तु व्यक्तित्व ही इतना प्रखर था कि उनका स्यवंसेवक उनकी बिना सम्मति के कोई कार्य ही नहीं करता था। जो सम्मति माँगता, उसे उचित सम्मति देते और वह जो उसमें सुधार करने को कहता उसके संशोधन को उचित होने पर तुरन्त स्वीकार कर लेते। किन्तु कोई उनसे बिना पूछे काम कर लेता, तो उसमें अपनी ओर से हस्तक्षेप भी नही करते। जब वह उसमें असफल हो जाता, हँसते हुए बड़े प्रेम से कहते– “मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था, तुम माने ही नहीं। अस्तु अब जो हुआ सो हुआ आगे यों करना।”

यह क़ितनी बड़ी बात है, सबके मन को रखते हुए सबसे काम ले लेना। यह विद्या उन्हीं पर आती थी। वे मानते थे राजनीति का काम बहुत हलका है, इसमें स्थिरता नहीं किन्तु जिनकी रुचि उसी में हो, उनकों उसके लिए ही प्रोत्साहन देते थे। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को सर्वथा राजनीति से पृथक ही रखना चाहते थे। वे संघ में कार्य करने वालों को कूपमण्डूप भी रखना नहीं चाहते थे। चारों ओर दृष्टि रखो, देश की क्षण-क्षण की परिस्थिति से जानकारी रखो, जो तुम्हारे सहयोगी जूझ रहे हो, उन्हे यथा-शक्ति सहायता करों, किन्तु तुम स्वयं आग में न कूदो। बाहर रहकर ही उसे बुझाने की चेष्टा करों।

हमारे रज्जूभैया, यहाँ प्रयाग में ही किसी विधानसभा के वैकल्पिक प्रत्याशी होकर चुनाव में खड़े हो गये। इसलिए कि जो जनसंघ का प्रत्याशी है, किसी कारण से उसका प्रवेश पत्र अस्वीकार हो जाय, तो उसके विकल्प में ये खड़े रहे। उनका प्रवेश पत्र स्वीकृत हो गया और इन्होंने तुरन्त अपना नाम हटा लिया। किन्तु इतने से ही वे अप्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें मीठी झिड़की दी। तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए था।

इन्दौर के कोई संघचालक थे। वे चुनाव में खड़ा होना चाहते थे, गुरुजी ने बहुत मना किया, वे माने ही नहीं। आप कुछ नहीं बोले। जब वे पराजित हो गये, तब मीठी चुटकियाँ ले लेकर उनकी जो खिल्लियाँ उड़ाई उन्हे सुनकर सभी लोट-पोट हो गये। परन्तु उनके मन में कोई भेद-भाव नहीं फिर वैसा ही प्यार फिर वैसा ही अपनत्व।

उत्तर की ओर देहली में बसन्त राव, लखनऊ के लिए भाऊराव देवरस, उधर पंजाब के लिए कुड़झड़कर, बिहार के लिए देवजी ये सब प्रायः कुछ ही समय के आगे पीछे आये थे। बसन्त राव जब देहली में आये थे, तभी से मेंरे पास आते जाते थे। उन्होंने देहली में संघ का बहुत भारी कार्य किया। कहना चाहिए देहली में उन्होंने ही संध कार्य की नींव डाली और उसे पल्लवित पुष्पित और फलित बनाया। मैं जब भी देहली जाता वे मेरे साथ ही साथ रहते। हमारे ही उड़ीया बाबा जी भक्तों को प्रसन्न रखने को एक-एक दिन में ५०-५०, ६०-६० घर तक भिक्षा करने जाते। मैं भी देहली में जब जाता तो इतने तो नहीं किन्तु एक दिन में दस-पाँच घरों में तो मैं भी भिक्षा करने जाता। हमारे बसन्त राव जी भी मेंरे साथ-साथ भिक्षा में जाते और मेंरी बाते देखकर बहुत प्रसन्न होतें। मुझसे उनका अत्यंत स्नेह था। पीछे संघ और जनसंघ को लेकर उनका संघ से मतभेद हो गया। उन्होंने विवाह कर लिया। संघ को छोड़ ही दिया। दूसरे-दूसरे हिन्दी आदि के कार्य करने लगे। मेंरे पास बीच-बीच में वृन्दावन आते रहते, जब मैं देहली जाता तब आकर मिलते।

मेंरे अनशन के दिनों में मेरे सभी स्नेही अत्यधिक चिन्तित थे। बसन्त राव जी भी अत्यंत दुखी थे। एक दिन वे मेंरे पास बैठे थे। तभी तक न जाने कहाँ से गुरुजी आ गये। उन दिनों उन्होंने सभी कार्य स्थगित कर दिये थे, मेरे अनशन के कारण वे बहुत ही व्यग्र बने रहते। वे भी मेरे पास आकर बैठ गये। मैं बहुत दिन से सोच रहा था। बसन्त राव के लिए गुरूजी से कुछ कहूँ, किन्तु ऐसा कोई उपयुक्त अवसर ही नहीं आया। आज उपयुक्त अवसर देखकर मैने बात छेड़ी। मैंने गुरुजी से कहा -"ये वसन्तराव जी हैं, देहली के नेता हैं, आप इन्हे जानते हैं?" तब आप हँसकर बोले हाँ- "हाँ, कुछ-कुछ तो जानता हूँ इतना कहकर खिलखिला कर हँस पड़े।"

मैंने कहा-"इन्हें क्षमा कर दीजिये" फिर मैने वसन्तराव से कहा- "गुरुजी के पैर छुओ।"

वसन्तराव जी ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। उठकर नेत्रों में अश्रु भरकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ गुरुजी के पैर छुए। उन्होंने अत्यंत स्नेह से गोदी में भर लिया और गद्‌गद् बाणी से बोले-"महाराज अपना ही बच्चा है।"

मैंने कहा – "इन्हें कोई काम दीजिये।"

उन्होंने कहा – "अच्छी बात है, सोचूँगा।"

पीछे उन्हे वनवासियों का काम दिया और भी कई कार्य बताये। अब उस दिन विद्यार्थी परिषद के अध्यक्ष आये थे। वे बता रहे थे – "अब जो शिवाजी के राज्याभिषेक की तीन सौ वर्ष की त्रिशताब्दी एक वर्ष तक मनाई जाने वाली है, उसका कार्य वसन्तराव जी को ही सौंपा गया है। ऐसे क्षमाशील सहृदय दयालु थे, गुरुजी। एक बार जिसे अपना लिया, फिर जीवन भर उसे छोड़ना जानते ही नहीं थे।

हमारे मधोकजी हैं, वे जनसंघ से मतभेद के कारण पृथक से हो गये हैं, अपना दूसरा दल भी बना लिया है, फिर भी गुरुजी के प्रति संघ के प्रति उनकी निष्ठा ज्यों कि त्यों बनी हुई है। वे रूग्णावस्था में गुरुजी को देखने गये। उनके प्रति श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए उन्होंने काशी में कहाँ–"मैं अब भी संघ का स्वयंसेवक हूँ, संघ से मुझे किसी प्रकार की शिकायत नहीं। संघ हिन्दुओं की दृढ़ता के साथ सेवा कर रहा है।"

यह उनके व्यक्तित्व का ही चुम्बक के सदृश आकर्षण था।

एक स्वयंसेवक को जो बड़े पद पर थे। किसी चारित्रिक दोष के कारण पद से पृथक होने का आदेश दे दिया था। पृथक होने पर भी वे गुरुजी से अपने भविष्य के सम्बन्ध में पूछते रहते थे। एक दिन उन्होंने कहा–"देखों, भैया! पूर्वजन्म की वासनाओं के अनुसार प्राणी न चाहने पर भी विवश होकर ऐसे कार्यों में रत हो जाता है, जो अच्छे नहीं हैं। बहुत से लोग पद-प्रतिष्ठा पाने के लिए अनुचित उपायों को काम में लाते है। बहुत से धन पाने को न करने योग्य कार्यो को करते हैं। बहुत से लोग चरित्र को दूषित करते हैं। मेंरी दृष्टि में तो ये सब के सब एकही अपराधी है, किन्तु समाज में चरित्र दोष को लोग अत्यधिक बुरा मानते हैं। मैं तो इन सबकों समान ही मानता हूँ। तुम चाहों तो मैं तुम्हें दूसरा कार्य दे सकता हूँ।"

उन्होंने कहा–"मैं कुछ दिन एकान्तवास करके कुछ आध्यात्मिक शक्ति अर्जन करलूँ। उन्होंने दो के नाम बताये और कहा – "मैं कहाँ जाऊँ?"

आप बोले–"भाई, अमुक का नाम तो मैंने सुना है, चमत्कार भी सुने हैं, किन्तु मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता। महाराज को मैं जानता हूँ, वहाँ जाकर रहो, उन्हें विशेष कष्ट मत देना।" इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर मेरे पास भेज दिया। यह था उनका अपने लोगों के प्रति ममत्व।

जहाँ भी जो जिस क्षेत्र में काम कर रहा है, उसे प्रोत्साहन तो देते, किन्तु अपनी मान्यता को उस पर लादते नहीं थे, यहीं उनकी महानता थी।

उस दिन लोकसभा में पुरी के शंकराचार्य को लेकर हरिजनों के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद हुआ। किसी ने कहा-'शंकराचार्य पर मुकदमा चलाया जाय', किसी ने कहा-'उन्हें यहाँ बुलाया जाय, किसी ने कहा-''उन्हें मेज के नीचे बिठाया जाय।'' इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध बहुत सी बातें कहीं गयीं और जनसंघ के सदस्यों ने भी इसमें सहमति प्रकट की। मुझे बहुत बुरा लगा। उसके विरुद्ध मैंने एक लेख भी लिखा जो बहुत से पत्रों में छपा।

जब गुरुजी से मेरी भेंट हुई, तब मैंने उनसे कहा-''यह बहुत ही अनुचित हुआ। ईसाई या मुसलमान धर्माचार्य के विरुद्ध ऐसी कोई बात कह सकता था क्या? जनसंघ वालों ने भी इसका विरोध नहीं किया?''

इस पर आप बोले-''महाराज! मैंने प्रकाशवीर शास्त्री से कहा-''तुम ऐसी बात कैसे सुनते रहे। तुम्हें स्पष्ट कह देना चाहिये था, कि इस चकल्लस को बन्द करो, नहीं यह लोकसभा न रह कर डण्डों की सभा हो जायगी। तुम्हें डण्डे से इन बातों का विरोध करना चाहिये था।''

देखिये, कितनी बुद्धिमत्ता के साथ उन्होंने विरोध किया। जनसंघ के किसी सदस्य का नामोल्लेख नहीं किया श्रीप्रकाश वीर शास्त्री स्वतंत्र सदस्य थे। उनका नाम लेकर अपना अभिप्राय कह दिया। जनसंघ वाले भी समझ गये।

उनका स्पष्ट मत था कि ''अपनी पीठों पर कोई हो, पीठों की मर्यादा को हमें बनाये रखना चाहिये। यदि हम पीठों का पीठाचार्य का अपमान करना आरम्भ कर देंगे, तो फिर हमारे पास रह ही क्या जायगा। समाज में एक प्रकार का विप्लव हो जायगा।''

इसीलिए वे किसी भी छोटे से छोटे साधु को देखते उसे सर्वप्रथम झुक्कर उसके वेश के लिये प्रणाम करते। इसी का नाम मर्यादा-पालन है। वे मर्यादा पालन का सदा ध्यान रखते। जिस गृहपति के यहाँ जाते, जिसके यहाँ ठहरते। उनके वृद्ध माता-पिता को झुक कर प्रणाम करते। घर से विदा होते समय वृद्ध पुरुषों के पैर छूकर जाते यद्यपि अपने पैर भरसक वे किसी दूसरे को छूने नहीं देते थे।

वे देश भर में घूमते, लोगों के घरों में जाकर रहते थे, जिसके घर टिकते उसके बच्चों में हिलमिल जाते, उनमें आत्मीयता स्थापित कर लेते। सन्यासियों जैसा कमंडलु भी रखते। आज इस घर में हैं कल अपना कमंडलु उठाया दूसरे घर में चल गये। जब मैं बम्बई था, तो पहिले दिन तो जहाँ मैं ठहरा था वहाँ ठहरे, दूसरे दिन मथुरा के कोई दूध के व्यापारी थे, उनके घर चले गये। मैं जब उनके घर गया तो उन्होंने माला पहिनाई चन्दन लगाया।

उनको चन्दन लगाने माला पहिनाने जब गृहपति बढ़ा तो आपने कहा-"वहीं पूजा ठीक है यहाँ नहीं। कभी न माला पहिनते न किसी से कोई अन्य ही सेवा कराते। दूसरों को सम्मान देकर अपने अमानी बने रहते। ऐसे थे वे हमारे मर्यादापालक अमानी मानद श्री गोलवलकरजी।

१८

इधर दो वर्ष से उनका स्वास्थ्य गिर ही रहा था, २-३ गिलटियाँ हो गयीं थी, उन्हें बम्बई में शल्य चिकित्सा द्वारा निकलवा दिया था। किन्तु निकलने पर उसका परिणाम स्वास्थ्य पर प्रतिकूल ही पड़ा। उनके अनुयायी प्रशंसक भक्त इससे परम चिंतित थे, किन्तु वे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे। सन् १६३५ में उन्होंने संघ का कार्य सम्भाला उस समय सम्भवतया २६-३० वर्ष के रहे होंगे और सन् १६७३ तक वे अनवरत संघ के कार्य से पूरे देश में घूमते ही रहे। ३८ वर्ष उन्होंने न स्वास्थ्य की चिन्ता की न रोगों से पराभूत हुए। जब गिलटी में पीड़ा होने लगी, तो सभी ने उसे निकलवाने की सम्मति दी। तब आपने कहा-"५-६ वर्षों तक तो मैं इस गिलटी को लिये हुए भी कार्य कर सकता हूँ। तब राजमाता सिंधिया ने कहा-"गिलटी के प्रति आपका इतना मोह क्यों है?"

आपने कहा-"निकलवाने आदि में कई दिन व्यर्थ हो जायँगे।"

जब सबकी सम्मति निकालने की ही हुई तो बम्बई में गिलटी निकलवाई। ४-५ दिन में ही चिकित्सालय से चले आये और पुनः पूर्ववत् कार्य में जुट गये। उन्हें बिना कार्य किये क्षण भर भी भारी पड़ जाता था।

कुछ लोगों ने उनको जन्मपत्री किसी भृगु संहिता के ज्योतिषी को दिखायी। उसमें स्पष्ट निकला यह ६६वाँ वर्ष उनके लिये अत्यन्त ही अनिष्टकारक है, अर्थात् मृत्यु योग है। इसकी शांति के लिये रुद्रयोग कराना चाहिये। वे नही चाहते थे, "मेरे निमित्त कुछ कराया जाय या मेरे लिये अन्य लोग चिन्तित हों" माधवजी देशमुख, भाऊरावजी देवरस आदि इन सब भाइयों ने मिलकर काशीजी में माधवजी के घर पर रुद्रयोग का आयोजन कराया। वह योग नौ दिन चला। मैंने उसकी पूर्णाहुति में उन्हें काशी आने को लिखा। वे उन दिनों आसाम, उड़ीसा, बंगाल के कार्यक्रमों में थे। कलकत्ते से कुछ घंटों के लिये वे काशी पूर्णाहुति के दिन आये। इधर से मैं भी काशी गया। तब तक वे आ गये थे। शुद्ध स्वच्छ धोती पहिने पीली रामनामी दुपटा ओढ़े जिस पर नमः शिवाय नमः शिवायः छपे हुए थे, एक आस्तिक यजमान की भाँति पूजन कर रहे थे। सपत्नीक माधवजी उनके कार्य में सहायता कर रहे थे। विधिवत पूजन किया। पूर्णाहुति करायी। काशी के सुप्रसिद्ध पंडित

पधारे थे। सबकी चरण वन्दना की। बड़ी देर मुझसे बातें करते रहे। मुझे क्या पता था, ये उनके अन्तिम दर्शन हैं? अब यह निरन्तर कार्यरत सौम्य मूर्ति फिर देखने को न मिलेगी? अब वे पुनः झूँसी न आवेंगे? अब ये पुनः मेरे साथ बैठकर प्रसाद न पावेंगे? हँसते-हँसते मुझे द्वार तक विदा किया। रज्जूभैय्या को आदेश दिया-"महाराज को बहुत पैदल न चलाना।" बस यही उनके अन्तिम दर्शन थे।

हाँ एक बात तो मैं भूल ही गया। एक बार जब उनकी ५१वीं वर्षगांठ सार्वजनिक रूप से मनायी जा रही थी, तब कानपुर में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन था, उन्हें थैली भेंट की जा रही थी, मैं उस सभा का अध्यक्ष था। मैं कोकटी रंग का चदरा ओढ़ता हूँ, वैसा नरमा का (जिसकी रुई का ही स्वाभाविक रंग गेरुआ रंग का होता है वैसा) एक चदरा, एक कटि वस्त्र, एक साफी और यज्ञोपवीत तथा सिर धोने की मुलतानी मिट्टी उन्हें भेंट की थी। उन वस्त्रों को सादर, ग्रहण करते हुए वे हँसकर बोले-"महाराजजी। मुझे बिना साधु बनाये नहीं छोड़ेंगे।"

मैंने हँसकर कहा-"महाराज! आप तो जन्मजात साधु हो, आपको साधु कौन बना सकता है? ये गेरुए नहीं हैं, ईनका यह स्वाभाविक रंग है।"

वे जब भी आते, मैं उन्हें कोई वस्त्र भेंट करता। हमारे गोलोक में जब गोरक्षा सम्मेलन का सभापतित्व करने पधारे, तो चलते समय उन्हें एक नवीन चदरा भेंट किया। तब वे बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ बोले-"महाराज जी! मुझे नया वस्त्र न दें मुझे तो कोई अपना ओढ़ा हुआ प्रसादी वस्त्र दें।"

उस समय जाड़ों के दिन थे, जिस कम्बल को मैं ओढ़ता था, वह कम्बल मैंने उन्हें दिया और कहा-"यह एक स्थान से फटा हुआ है।" आप बोले-"कोई बात नहीं, मुझे सब चलेगा।"

कुछ दिन पश्चात् जब मुझे फिर मिले तो बड़े उल्लास के साथ बोले-"देखिये, महाराजजी! इस वर्ष का सम्पूर्ण प्रवास मैंने आपके इसी कम्बल के द्वारा किया है।"

अब के जब वे झूसी आये थे, तब मुझसे तो कहा नहीं, हमारे जो रामानुज पांडेय हैं, जो संकीर्तन भवन धार्मिक न्यास के मंत्री भी है, उनसे कहा-"महाराजजी हमें सदा चदरा तो देते है, किन्तु कभी लंगोटी नहीं देते। अबके हम महाराजजी से लंगोटी माँगेंगे।"

हम साधुओं में लंगोटी विरक्त को ही दी जाती है। अब के जब मैं काशी गया तो चदरा, कटिवस्त्र, उसी के साथ लँगोटी भी लेता गया और उनसे कहा-"अब के मैं आपके लिये लंगोटी भी लेता आया हूँ।"

यह सुनकर वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। मुझे क्या पता था कि लंगोटी लगाकर अब वे संघ के समस्त कार्यों से उपराम होने की तैयारियाँ कर रहे हैं।"

१८

जब मैंने पत्रों में पढ़ा कि वे अस्वस्थ होकर नागपुर में ही पड़े हैं और इन्दौर के वैद्यराज पंडित रामनारायणजी उनकी चिकित्सा कर रहे हैं तो मैंने निम्न पत्र उनके नाम भेजा–

।। श्री हरिः ।।

श्री गुरुजी!

समाचार पत्रों में डॉ. थत्ते के कई वक्तव्य पढ़कर मुझे सन्देह हुआ। ये वक्तव्य क्यों निकाले जा रहे हैं। तबियत बहुत खराब तो नहीं है? कल जब पत्रों में मधोक का वक्तव्य पढ़ा और उन्होंने बहुत गम्भीर स्थिति बताई, तब से मुझे बड़ी चिन्ता हो रही। किसी से कुछ यथार्थ बात ज्ञात न होने पर आपको ही पत्र लिखा। वैसे अनावश्यक पत्र लिखकर मैं आपके बहुमूल्य समय को नष्ट करना नहीं चाहता। एक मेरी बहुत पुरानी वासना है। भर्तृहरिजी ने एक स्थान में लिखा है--

बोद्धार मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मय दूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।

पण्डित, विद्वान विद्या के अभिमान में भरे रहते हैं, धनिक डरे रहते हैं कि कोई माँग न बैठे, शेष सब अज्ञपुरुष हैं। कवि अपना सुभाषित सुनावे तो किसे सुनावे? इसलिए उसकी कथा उसके हृदय में ही जीर्ण हो जाती है। कोई सुयोग्य श्रोता ही नहीं मिलता, अपने हृदय की बात किसे सुनावें?

श्री बद्रीनाथजी में जब से मैंने आपको कथा सुनाई है और आप उस समय अश्रु प्रवाहित नेत्रों से ध्यानपूर्वक मनोयोग से कथा सुनते रहे, वह दृश्य मुझे भूलता नहीं। जब स्मरण करता हूँ, तभी रोमांचित हो जाता हूँ। तभी मन में एक वासना उठी थी, यदि पूरा 'भागवत चरित' कभी सुनाने का सुअवसर प्राप्त हो, तो मुझे कितनी प्रसन्नता होती है? श्रोता से अधिक वक्ता को प्रसन्नता होती है। तब जब उसे कोई सहृदय सुनने वाला श्रोता मिल जाय।

झूसी आश्रम गंगातट पर शान्त एकान्त नगरों की खटपट से रहित स्थान है। अब जब संस्कृत के विद्यार्थियों की परीक्षाएँ समाप्त हो जायँगीं, तब और भी नीरव निस्तब्ध बन जायगा। यदि महीने दो महीने तीर्थराज प्रयाग में गंगा तट पर आप यहाँ रह सकें, तो मेरी भी वासनापूर्ति हो जायगी।

आपको सुख मिलेगा, इसे मैं नहीं कह सकता। स्वच्छ वायु, गंगाजल का सेवन, एकान्त निवास ये सभी स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर हैं। देशी-विदेशी सभी प्रकार के चिकित्सक यहाँ सुलभ हैं। थोड़ी बहुत चिकित्सा आयुर्वेदिक मैं भी जानता हूँ। आज मैंने इस सम्बन्ध में कई कार्यकर्ताओं से सम्मति ली, सबने सहर्ष इसका अनुमोदन किया। मुझे एक ही सन्देह है कि श्री थत्ते आदि आपके परिचारक, चिकित्सक, सहयोगी इस प्रस्ताव पर सहमत होंगे या नहीं? मुझे ऐसी आशा है कि यहाँ के प्रवास में आपको विशेष कष्ट न होगा। गरमी तो यहाँ अत्यधिक पड़ी ही है, उसका सब उपाय किया जायगा।

यदि ऐसा सम्भव न हो, तो कहो तो मैं ही नागपुर आ जाऊँ? वैसे आजकल मेरा नियम कहीं भी बाहर जाने का नहीं है किन्तु अपवाद मानकर इसे भी तोड़ सकता हूँ। नागपुर में मुझे असुविधा रहेगी। मेरा नियम केवल गौ के दूध, घृत का विशुद्ध चीनी, फलाहार आदि का, गंगाजल पान स्नान का है परन्तु फिर भी मुझे वहाँ आना ही हुआ तो सब प्रबन्ध करूँगा। जैसा विचार हो, वहाँ के सहयोगियों से सम्मति करके रज्जूभैय्या से जैसा हो तैसा कह दें। मैंने सुना है वे बारह तारीख को नागपुर जाने वाले हैं। यह पत्र मैं उन्हीं के हाथों भेजता किन्तु पहले से इसलिए भेजा कि आपके स्वास्थ्य के सब समाचार शीघ्र ही प्राप्त हा जायँ और आप भी वहाँ सभी से इस विषय में परामर्श करलें। पत्र न चाहने पर भो बड़ा हो गया। सबको मेरा यथायोग्य प्रणाम व आशीष कहें। डॉ० थत्ते को विशेष रूप से। एक टोकरी लड्डू नित्य (थत्तेजी को) मँगाया करूँगा।

(संकीर्तन भवन, झूँसी, प्रयाग) — आपका अपना ही मंगलकांक्षी
वैशाख कृ० ७।२०३० वि० — प्रभुदत्त

पत्र को गये कई दिन हो गये, उत्तर कुछ भी नहीं आया। तब मेरी चिन्ता बढ़ गयी। उसी बीच रज्जूभैय्या मेरे पास आये। मैंने कहा-"गुरुजी को मैंने पत्र लिखा था।" वे बोले-"उसी उत्तर को तो पढने ही मैं आया हूँ, गुरुजी का उत्तर कहाँ है?"

मैंने कहा-"भैया! मुझे तो उत्तर मिला नहीं, तुम्हें कैसे पता है कि उन्होंने उत्तर दिया है?"

वे बोले-"वह सब तो पत्रों में छपा है "मदरलैण्ड" के सम्पादक मलकानी जी गुरुजी से भेंट करने गये थे। उन्होंने 'मदर इण्डिया' में अपनी प्रत्यक्ष भेंट वार्ता छापी है। उसमें लिखा हैं कि प्रातःकाल गुरुजी लम्बा पत्र लिख रहे थे। मैंने उनसे पूछा-"आप तो इतना लम्बा पत्र लिखते नहीं, किसके लिये पत्र लिख रहे हैं?" तब उन्होंने कहा-"देखो, ब्रह्मचारीजी का कितना लम्बा पत्र आया है, उसी का उत्तर दे रहा हूँ।"

मैंने कहा-"मेरे पत्र तो मुझे उच्छिष्ट मिलते हैं। पहिले उन्हें कोई पढ़ लेता है, तब मुझे देर से मिलते हैं।" पीछे गुरुजी का लिखा पत्र मुझे मिला। वह इस प्रकार है।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, केन्द्र-नागपुर
सरसंघचालक मा० स० गोलवलकर
सरकार्यवाह म०द० देवरस
दूरभाष : ४२८०६
पत्र व्यवहार का पता
मा. स. गोलवलकर
डॉ. हेडगेवार भवन
नागपुर-२
दिनांक २७ दि० ५।५।७३ वैशाख शुक्ल ३, सम्वत् २०३०

श्रद्धेय श्री ब्रह्मचारीजी महाराज,

सेवा में सादर साष्टांग प्रणाम।

आपका कृपा-पत्र दिनांक १-५-७३ को मिला। श्री मधोकजी का वक्तव्य मैंने देखा नहीं है। वैसे वह नागपुर किसी अपने कार्यक्रम के हेतु आये थे तब मुझसे कुछ मिनटों के लिए मिले उनसे बातें तो कुछ नहीं हुई। परन्तु सामान्य कुशल प्रश्नोत्तर हुए और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में इतनी ही भेंट में समझ सकने योग्य वैद्यकीय ज्ञान उन्होंने उपलब्ध किया है। ऐसा समाचार भी नहीं है। इतना ही समझना उचित होगा कि उनके मन में मेरे प्रति जो आत्मीयता है उसके कारण मेरे स्वास्थ्य को अत्यधिक गम्भीर मानकर उन्होंने वक्तव्य दिया होगा।

अपना श्रीक्षेत्र काशी का कार्यक्रम पूर्ण कर उसी सायंकाल मैं कलकत्ता लौटने के लिए चल पड़ा। वहाँ से आसाम प्रान्त में प्रवास के निमित्त जाकर फिर बाहर में तीन स्थानों पर कार्यक्रम थे उनमें गया। अन्तिम स्थान राँची था। वहाँ से चलकर दिनांक ११ मार्च को कलकत्ता लौट आया और दिनांक १४ मार्च को नागपुर पहुँचा। राँची में गाड़ी में चढ़ने के लिए जाते समय स्वांस बहुत फूल गया और कुछ समय के लिये लेटे रहना पड़ा। यह प्रथम सूचना स्पष्टतया ध्यान में आने वाली थी। नागपुर में यह स्वांस फूलना बढ़ता गया और कुछ पग चलना, थोड़ा-सा भी बोलना अति कष्टप्रद हुआ। इन्दौर के माननीय पं० राम नारायण शास्त्री जी यहाँ बैठक के हेतु आये थे। उनके उपचार स्थानीय डाक्टरों के परामर्श से प्रारम्भ हुए जो चल रहे हैं। मित्रवर डॉ. थत्ते दो बार बम्बई जाकर वहाँ के, मेरे ऊपर शल्य चिकित्सा करने तथा

अन्य जानकार आत्मीय डाक्टरों से परामर्श कर आये। शरीर में गम्भीर दोष नहीं है। पुराने रोग का प्रादुर्भाव भी नहीं है। क्रम से सब ठीक होगा, यद्यपि समय लगेगा। ऐसा ही सबका मत है।

आज की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है परन्तु चलना बोलना अभी भी कठिन, कुछ कम, परन्तु कठिन है। सीढ़ियाँ चढ़ना उतरना या चढ़ाव पर उतरना असम्भव है। इस कारण प्रवास का प्रश्न ही नहीं उठता। अब तो अपने ग्रीष्मकाल संघ शिक्षा वर्ग प्रान्त-प्रान्त में प्रारम्भ हो चुके हैं, परन्तु मेरा कहीं जाना नहीं होगा। नागपुर के वर्ग में भी नहीं जा सकूँगा। केवल आने जाने वाले शिक्षार्थियों से दो-चार करके अपने ही कमरे में मिलने का प्रयत्न करने का सोचा है। वह भी कितनी मात्रा में निभा पाऊँगा कह नहीं सकता।

यह सब सोचकर आपका झूँसी आकर ठहरने का सुझाव अतिप्रिय होते हुए भी संभव नहीं होगा। ऐसा आज की स्थिति से अनुभव होता है। दूसरा आपके नागपुर आकर रहने का आपके नियमों में गोदुग्ध, गोघृत अपने यहाँ ही बन सकता है क्योंकि इन दिनों में अपनी चार गायें दूध दे रही हैं। मैं भी गो-दुग्ध, गोघृत का ही प्रयोग कर रहा हूँ। परन्तु अन्य नियम तो चलाना असम्भव दिखता है।

आपने श्री बद्रीनारायणजी की यात्रा और उस पुण्य-क्षेत्र में आपका सहवास कथा भी भागवत प्रवचन का अत्यन्त सुखद स्मरण कराया है। आपसे श्री भगवान् श्रीकृष्णजी की लीलाओं को सुनकर कौन भाव गद्गद नहीं होगा? आपकी मुझे पूर्ण श्री भागवत सुनाने की इच्छा बड़ा अनुग्रह है। मेरी परिस्थिति से तुलना करना हास्यस्पद है, परन्तु उस प्रसंग का स्मरण हुआ जब सात दिनों में श्री शुकदेव महामुनि ने उन्हें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत सुनाकर उनका उद्धार किया। आप तो इस युग में श्री शुक्राचार्य तुल्य ही हैं। आपकी वाणी में, कण्ठ में अलौकिक माधुर्य है। कथा सुनाते समय की आपकी तन्मयता मन को मोहित करने वाली है। आपसे श्री भागवत सुनना पूर्वजन्मों के पुण्य संचय से ही हो सकता है। अब यह पुण्य संचय मेरे पास होने की आशंका है। क्योंकि मैं परिस्थिति के इस सुअवसर का लाभ उठाने से वंचित हो रहा हूँ।

परन्तु मनोयोग से स्मरण में जुटा हूँ। दूसरा काम नहीं है। वह सौभाग्य है। सामान्य दैहिक कर्म और मेरे मित्र के द्वारा लहराया जाने के पश्चात् नित्यकर्म का पालन और फिर आराम की कुर्सी में पड़े-पड़े स्मरण का आनन्द आपकी कृपा आशीर्वाद यह चल रहा है। नहीं तो 'प्रयाण काले कफ वात पित्तै, कण्ठावरोधे स्मरणं कुतस्ते' की अवस्था में जीवन नैया डूब जायगी।

मैं समझता हूँ कि मैंने अपनी स्थिति कथा इस पुनीत सुझाव के अनुसार करने में असमर्थता पर्याप्त स्पष्ट की है।

मेरा स्वास्थ्य सुधार पर है। 'अच्युतानन्द गोविन्द नाम स्मरण भेषजम्। नस्यन्ति सकलाः। रोगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम्' का अनुभव कर रहा हूँ। श्री नववर्ष प्रतिपदा के कुछ आगे पीछे अति गम्भीर स्थिति होने की आशंका चिकित्सकों को थी। परन्तु अब वह स्थिति नहीं है और अपने सहयोगी कुछ राहत को सांस ले रहे हैं। एक चिकित्सक आये थे, उनके औषधि प्रयोग के बहुत सुझाव थे। मैंने उन्हें छोटा-सा उत्तर दिया 'होइहि वही जो राम रचि राखा' फिर चिन्ता का दुःख का कारण ही क्या है?

शेष श्री भगवत् कृपा से कुशल है। आपके तथा सम्पूर्ण आश्रम के मंगल की कामना से प्रार्थना करता हूँ। इतिशत्।

श्री भगवत् चरणों में विनीत
मा० स० गोलवलकर

२०

पत्र को पाकर मैंने रज्जूभैया के हाथों उसका उत्तर भेजा और लिखा कि अभी आपको 'भागवत चरित' सुनने में श्रम होगा। कुछ अच्छे हो जायँ तो मैं वहाँ आकर या जहाँ संयोग होगा फिर कभी आपको सुनाऊँगा। कुछ आमल की बटी रसायन यहाँ तैयार करायी हैं, पण्डित रामनारायणजी से पूछना-यदि उनका सम्मति हो, तो आधी-आधी गोली दोनों समय शहद में उन्हें दिया करें।''

पत्र और औषधि लेकर रज्जूभैय्या स्वयं नागपुर गये। कई दिनों तक जब कोई उत्तर नहीं आया तब मुझे चिन्ता हुई, क्या बात है? इसके कई दिन पश्चात् गुरुजी के निजी सचिव श्री डॉ० थत्तेजी का निम्नलिखित पत्र मुझे मिला।

।। श्री ।।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ केन्द्र (नागपुर) नागपुर
सरसंघचालक-मा० स० गोलवलकर डॉ. हेडगेवार भवन,
सरकार्यवाह-म.द. देवरस नागपुर
दूरभाष-४२६०६
क्रमांक-६४६ दि० २२.५.७३ तिथि-ज्येष्ठ कृष्ण-५ संवत् २०३०

परम श्रद्धेय श्री ब्रह्मचारीजी महाराज

सादर साष्टांग प्रणाम।

आपका आशीर्वाद पत्र प्राप्त हुआ। साथ में अमलकी रसायन की गोलियाँ मिलीं। कल माननीय पण्डित रामनारायण शास्त्रीजी से बात हुई।

उन्होंने बताया कि बड़ी अच्छी वस्तु है। अवश्य अपनी औषधि के साथ देंगे। अतः उनकी पुड़िया में ही आधी गोली पीसकर डाली जाती है, ऊपर से दूध तो है ही किन्तु उसमें अन्य औषधियाँ रहती हैं, तो माननीय शास्त्रीजी ने कहा है कि एक-एक पिप्पली भ्री साथ में दी जाय। आज से वैसा देना प्रारम्भ किया है।

स्वास्थ्य में सुधार हो ही रहा है। अब तो आपके आशीर्वाद स्वरूप रसायन प्रारम्भ है निश्चय ही उसका लाभ होगा। परम पूज्यनीय श्री गुरुजी ने साष्टांग प्रणाम कहा है।

माननीय पण्डित रामनारायण शास्त्रीजी ने जो प्रयोग प्रारम्भ किया है उसमें पर्पटी वगैरह नहीं है। स्वर्ण त्रैलोक्य चिंतामणि, (वज्रयुक्त) मुक्ता नवाय मंडूर, अभ्रक, (५ सौ पुटी) वज्र मौक्तिक प्रवाल पिष्टि आदि औषधियाँ हैं। साथ में शिवागुटिका, वरुणादिक्वार्थ आदि हैं, लाभ हो रहा है।

प्रभु की कृपा है आप जैसों के आशीर्वाद हैं और हम सबकी प्रार्थनाएँ हैं, यश मिलेगा ही।

श्री रज्जूभैया आकर गये हैं। वर्ग सुचारू रूप से चल रहा है, वर्ग में आये हुए स्वयंसेवक प्रांतशः मिलने आते हैं।

शेष भगवत् कृपा।

आपका आशीर्वाद पेक्षक

थत्ते

मुझे लड्डू आगे कभी भी मिल सकेंगे यह विश्वास है।

थत्ते

पत्र को पाकर मुझे प्रसन्नता हुई कि अब अच्छे हो रहे हैं। उस दिन मैं प्रातः अपने बगीचे के वृक्षों को देखता हुआ टहल रहा था कि सहसा सियाराम 'दैनिक भारत' लेकर पहुँच गया। उसमें जो हृदय विदारक समाचार पढ़ा मैं धक्क से रह गया। गुरुजी चल बसे। सबको अनाथ बनाकर, भारतीय संस्कृति के व्युत्थान कार्य को अधूरा छोड़कर वे परलोकवासी बन गये। सब समाप्त हो गया। चारों ओर सूना-सूना दिखायी देने लगा। सोचने लगा-क्या अब गुरुजी झूँसी नहीं आवेंगे? क्या अब वे आकर मेरे साथ प्रसाद न पावेंगे? विश्वास तो नहीं होता किन्तु काल की कुटिल गति का स्मरण करके विश्वास करना ही पड़ता है, भर्तृहरिजी ने ठीक ही कहा है-

वयं यभ्यो जातश्चिर परिगता एवं खलुते
समं यैः संवृद्धाः स्मृति विषयतां तेऽपि गमिताः।
इदानीमेते स्म प्रतिदिवसभासन्न पतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिल नदी तीर तरुभिः।।

इसका भाव छप्पय में सुनिये--

जिनितै हम उत्पन्न भये तिनि पतो न पायौ।
जिनिके सँग में बढ़े नाम तिनिको बिसरायौ।
ज्यों ज्यों बीतत दिवस मृत्यु के ढिंग त्यों जावैं।।
नदी कूल के तरु सरिस, बैठे जाई आस में।
कब प्रवा आवै प्रबल, पहुँचें यम के पास में।।

मरना तो एक दिन सभी को है। जिसने जन्म लिया है, उसे मरना ही होगा। किन्तु जो केवल अन्न को मिट्टी ही बना बनाकर चले जाते हैं, उन्हें संसार में कोई नहीं जानता। किन्तु जो अपने जीवन में असिधारा व्रत धारण कर लेते हैं, छुरे के धारों पर चलकर-स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख पहुँचाते रहते हैं ऐसे 'अधिसाराव्रती' की मृत्यु पर सभी को दुःख होता है। उसी दुःख से दुखी होकर मैंने ये कुछ शब्द लिखे। लिखने को तो बहुत कुछ है, किन्तु कहाँ तक लिखूँ। उसे पढ़ेगा कौन ? सबको तो अपनी-अपनी पड़ी है। सभी तो आपाधापी में निमग्न हैं। अरे मूरख प्रभुदत्त! तू क्यों भैंस के आगे बीन बजा रहा है, किसे तेरी बात सुनने का अवकाश है? न अवकाश हो, मुझे तो लिखने का व्यसन है। लिखवास लगी तो लिख दिया। लिखे बिना मुझसे रहा नहीं गया, इसीसे इतने सफेद कागद कारे कर दिये। अब कोई चाहे पढ़ो या मत पढ़ो। अब भर्तृहरि के शब्दों में 'असिधाराव्रत' की व्याख्या बताकर मैं अपने इस क्षुद्र वक्तव्य को समाप्त करता हूँ। अन्त में असिधारा व्रत की भी व्याख्या सुन लीजिए--

असिधारा व्रत यह है--

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रम विधिः,
प्रियं कृत्वामौनं सदरसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभि भवसाराः परकथाः
सतां केनोदिष्टं विषम मसिधाराव्रत मिदम्।।

छप्पय में इसका भाव सुनिये--

रखैं दानकूँ गुप्त करैं सम्मान अतिथि को।
करिकें पर उपकार रहे चुप कथन न उनिको।।
अन्य करै उपकार सभा में हरषि बखानें।
अधिक मान धन पाइ क्रोध करिबो नहिं जानें।
पर चरचा बिनु दोष जे, करहिं वही सत्पुरुष हैं।
असिधारा व्रत कठिन अति, बिनु सिखये ही करत हैं।।

ऐसे थे वे हमारे परमप्रिय असिधाराव्रती सत्पुरुष श्री गोलवलकरजी।

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर, झूसी (प्रयाग) प्रभुदत्त
आषाढ़ कृ० ११।२०३० वि०

श्री गोलवलकरजी क्या चाहते थे?

१

"वे चाहते थे, समस्त हिन्दू जाति-पांति का भेदभाव भूलकर सशक्त, संगठित, अनुशासनबद्ध और निर्भय बनें।"

इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त उन्होंने देशव्यापी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विस्तार किया।

२

"वे चाहते थे, भारत अखण्ड हो, इसका कृत्रिम विभाजन समाप्त हो।"

भारत को प्रकृति ने ही अखण्ड बनाया है, इसकी सीमा दैव निर्मित्त है। उत्तर में हिमालय, दक्षिण समुद्र पूरब में समुद्र और पश्चिम में सिन्धु। यह पाकिस्तान, बंगाल के दो भाग कृत्रिम बँटवारा है।

३

"वे चाहते थे, सम्पूर्ण भारत में गोहत्या सर्वथा बन्द कर दी जावे, गौ और बैल में कोई अन्तर न माना जाय।"

गोहत्या बन्दी किसी एक वर्ग की माँग नहीं। यह सम्पूर्ण भारत की माँग है। संविधान सम्मत है, गोहत्या बन्द न कराना भारतीय संविधान की हत्या है। भारत को स्वतंत्र हुए आज २६ वर्ष हो गये। गोरक्षा का प्रश्न अभी अधर में ही लटका हुआ है। सरकार कमेटियाँ आदि बनाकर उसे टालती जा रही है। उसके विरुद्ध वातावरण बना रही है।

४

"वे चाहते थे, कांग्रेस अपनी हिन्दू विरोधिनी नीति का परित्याग करे, नहीं देश में हिन्दुत्व की जड़ कट जायगी।"

मि० जिन्ना ने यह माँग की थी कि हिन्दुओं से हमारी संस्कृति मिलती नहीं है, अतः हमें मुस्लिम संस्कृति की रक्षा के लिये भारतवर्ष में पृथक मुस्लिम राज्य मिलना चाहिये। इस माँग की सभी कांग्रेसियों ने खिल्ली उड़ाई, असम्भव बताया। विरोध किया। गांधीजी ने तो यहां तक कहा मेरे शरीर के टुकड़े भले ही हो जायँ, मैं देश के टुकड़े न होने दूँगा। असंभव बात संभव हो गयी। देश की कृत्रिम विभाजन हो गया। कांग्रेसियों ने भविष्यवाणी की पाकिस्तान पाँच वर्ष से अधिक न चलेगा। मुसलमानों का प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग ने किया, हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व कांग्रेस ने किया। पाकिस्तान तो शुद्ध मुस्लिम देश बन गया और आधा बचा भारत बना धर्म निरपेक्ष।

५

"वे धर्म निरपेक्षता की नीति को हिन्दू धर्म के लिये महान् घातक समझते थे।"

हिन्दू धर्म अनादिकाल से परधर्म-सहिष्णु रहा है। उसने कभी भी किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया है। पारसी मुसलमानों के अत्याचारों से भागकर शरणार्थी बनकर हमारे देश में आये। सहस्रों वर्ष पहिले वे जो अपनी अखण्ड अग्नि लेकर आये थे, वह ज्यों की त्यों अभी तक अखण्ड जल रही है। कभी भी किसी ने पारसियों के धर्मकार्य में हस्तक्षेप नहीं किया। भारतवर्ष में आज पारसी सबसे अधिक धनी हैं। सबसे कम संख्या में हैं, वास्तविक अल्पसंख्यक तो वे ही हैं। उनके धन को न आज तक किसी ने लूटा न उन्होंने अल्पसंख्यक होने के नाम पर आज तक सरकार से कोई माँग की। इसलिये कि वे भारतीय संस्कृति में समरस होकर सदा से रहे हैं। मुसलमानों ने भारतीय संस्कृति का सदा विरोध किया है। इसीलिए उन्होंने भारतमाता का अंग विच्छेद कराया। पाकिस्तान बनाया। पाकिस्तान से चुन-चुनकर हिन्दुओं को भगा दिया, बहुतों को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया। भारत में धर्म निरपेक्षता की आड़ में वे ज्यों के त्यों बने रहे। उनका नारा था, 'लड़ के लिया है पाकिस्तान। हँस के लेंगे हिन्दुस्तान।'

६

"वे कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टि नीति के घोर विरोधी थे, वे कांग्रेस की भीरु नीति से अत्यन्त असन्तुष्ट थे।"

उनका कथन था, जब मुसलमानों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये देश का बँटवारा करा ही लिया तो वे अपनी संस्कृति का विरोध क्यों करते हैं? भारत में वे भारतीय बनकर रहे। जैसे चीन के मुसलमान चीनी बनकर रह रहे हैं। इंग्लैण्ड आदि ईसाई देशों में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी सब धर्म वाले सुखपूर्वक रह रहे हैं। वैसे भारत में पारसियों की भाँति भारतीय बनकर मुसलमान रहें। वे बात-बात पर हिन्दुओं का विरोध न करें और न अल्पसंख्यकों के नाम पर अपनी भारतीय विरोधी माँगों को न रखें। कांग्रेस वोटों के लोभ से जो मुसलमानों की उचित अनुचित मांगों को स्वीकार करती जाती है, उसके वे अत्यन्त विरोधी थे। उनका निश्चित मत था कि कांग्रेस की इस तुष्टिकरण की नीति से प्रान्त-प्रान्त, जिले-जिले तथा नगर-नगर में पाकिस्तान बनेगा। हिन्दू अल्पसंख्यक होकर कुछ काल में नष्ट हो जायेंगे। कांग्रेस की इस तुष्टिकरण नीति के कारण ही, कई प्रान्त ईसाई शासित, कई

प्रान्त मुसलिम शासित बन गये और वे अपनी शक्ति का पूर्ण उपयोग करके हिन्दू धर्म विरोधी कानून बना रहे हैं।

उनका निश्चित मत था कि भारतवर्ष को नेपाल की भांति अपने को हिन्दू राष्ट्र घोषित करना चाहिये। भारत ही हिन्दू राष्ट्र न होगा, तो कौन सा हिन्दुओं के लिये देश है। २०-२५ स्पष्ट मुस्लिम राज्य हैं। बहुत से घोषित ईसाई राज्य हैं। उन राज्यों में दूसरे धर्म के भी लोग रहते हैं। इसी प्रकार भारत हिन्दू राष्ट्र हो, उसमें सभी धर्म के लोग हिल-मिलकर रहें।

७

"वे चाहते थे, जैसे मुस्लिम देश अपने सम्मेलन करते हैं, वैसे ही हिन्दू भी सम्मेलन करें।"

इसीलिए उन्होंने नेपाल नरेश को बुलाया था, उन्होंने आने की स्वीकृति भी दे दी, किन्तु कांग्रेस सरकार ने अनेक अड़चनें डालकर उन्हें आने नहीं दिया। मुस्लिम सम्मेलन में उसने अपने प्रतिनिधि अवश्य भेजे। यद्यपि पाकिस्तान ने घोर विरोध भी किया, भारत मुस्लिम देश नहीं है इसे इसमें न जाने दिया जाय। किन्तु हमारी सरकार अड़ गई। हठ पकड़ गई कि हमारा देश मुसलमान देश है। वहाँ भारत के प्रतिनिधियों का जो अपमान हुआ है। उनकी जो नाक कटी। इससे वे अत्यन्त दुखी थे।

८

"वे चाहते थे, भारतवर्ष के हिन्दू दबकर न रहें। वे निर्भय होकर अपनी माँगे सरकार के सम्मुख रखें।"

मुसलमान धर्म के नाम पर, अल्पसंख्यक के नाम पर नित्य नई-नई माँगे सरकार के सम्मुख रखते रहते हैं। पाकिस्तान तो उन्होंने लड़कर ले ही लिया। अब वे कहते हैं, हमने भारत का हजारों वर्ष राज्य किया है, वह हमारा देश है, हिन्दुओं को हिन्दू बनकर रहना है, तो वे नेपाल चले जायँ। वे डटकर संगठित होकर अनुचित माँगों को रखते हैं, प्रधानमंत्री को डरा-धमकाकर अपनी माँग स्वीकृत कराने को विवश कर देते हैं। वे पूरी रणनीति से काम लेते हैं, कुछ तो राष्ट्रीय बनकर भीतर शासन में घुस जाते हैं, कुछ बाहर से आन्दोलन करके हूँ-हल्ला मचाकर, धमकियाँ देकर, शासकों को डराकर अपनी माँगे मनवाने को विवश कर देते हैं। पाकिस्तान में एक छोटे से छोटे चपरासी की भी नौकरी हिन्दुओं को नहीं मिलती। यहाँ राष्ट्रपति तक मुसलमान होते हैं। कितने ही गवर्नर मुसलमान हैं, कितने ही राज्यों में मुस्लिम मंत्री परमावश्यक विभागों में आरूढ़ हैं। वे इतने निर्भय-निर्भीक होते

हैं कि खुलकर मुसलमानों का पक्ष लेते हैं और अपनी बात को मनवा ही लेते हैं। केरल में शिक्षा-मंत्री मुसलमान हैं, उसने दस हजार अरबी के अध्यापक प्रत्येक स्कूल में नियुक्त कर दिये। संसार के समस्त राष्ट्रों में शिक्षा और भोजन दो ही महत्वपूर्ण विभाग हैं। आज दोनों विभाग मुस्लिम मंत्रियों के हाथ में हैं, वे दोनों हाथों से अपने और अपनी जातियों के घरों को भर रहे हैं। जो उर्दू पच्चीस वर्षों तक सरकार द्वारा उपेक्षित रही। उस उर्दू के मुर्दा को फिर खड़ाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की जा रही है। केवल उत्तर प्रदेश में ही दस सहस्र उर्दू के अध्यापक रखे जायेंगे और वे होंगे कौन ? मस्जिदों के मकतबों में उर्दू पढ़ाने वाले अशिक्षित मुसलमान। मुस्लिम मकतबों को सरकारी सहायता भरपूर मिलेगी। पहिले एक हिन्दुस्तानी एकडमी थी। वह हिन्दी उर्दू दोनों की उन्नति के लिये प्रयत्न करती थी, अब एक उर्दू एकडमी अलग बन गयी। जो हिन्दी सम्पूर्ण देश की सम्पर्क भाषा है, राष्ट्रभाषा है, जो उत्तर प्रदेश की एकमात्र राज्य भाषा है, उसके लिये तो आधी एकडमी और जिस उर्दू का संवैधानिक रूप से कोई स्थान ही नहीं उसके लिये डेढ़ एकडमी। केन्द्र में उर्दू का मंत्रालय पृथक् बन गया है। उर्दू के डाइरेक्टर पृथक हो गये। हिन्दी के छात्रों पर जहाँ एक रुपया व्यय होता है वहाँ उर्दू के छात्रों पर १७-१८ रुपये। पाँचवीं श्रेणी से हिन्दी पढ़ने वाले (हिन्दू) बालकों को हिन्दी और गणित दो विषय अनिवार्य है किन्तु उर्दू छात्र (मुसलमानों) को केवल उर्दू में ही परीक्षा देनी पड़ती है। यह धर्म निरपेक्षता का आदर्श है? करोड़ों रुपये उर्दू की उन्नति के निमित्त पानी की भांति बहाये जा रहे हैं। विद्यालयों में उर्दू अनिवार्य विषय बनाया जा रहा है। उर्दू का पाठ्यक्रम बड़ी तत्परता से, बड़ी तेजी से सरकारी व्यय से बनाया जा रहा है। इन्टर तक का तैयार हो भी गया। एम०ए० तक बनाने की तैयारियाँ हैं, फिर वैधानिक रूप में उर्दू प्रान्त की द्वितीय भाषा घोषित कर दी जायगी। हिन्दी का कोई हिमायती नहीं, बोलने वाला नहीं जो कोई कुछ बोलता भी है सरकार उसे असहिष्णु, साम्प्रदायिक, क्षुद्र विचार वाला कहकर तिरस्कृत कर देती है। इस प्रकार हिन्दी दब जायगी। उर्दू ही एकमात्र भाषा हो जायेगी, क्योंकि पूरे भारतवर्ष की शिक्षा की जिसके हाथों में बागडोर है वह तो हिन्दी है अनभिज्ञ उर्दू का पक्षपाती मुसलमान, केन्द्र में सरकार के भीतर बैठा है। उर्दू के शराबी कबाबी चरित्रभ्रष्ट कवि की शताब्दी पर साठ लाख और विश्व विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शताब्दी पर पचास लाख सरकार ने स्वीकृत होने पर भी शिक्षा मंत्री ने उन्हें देने से स्पष्ट मना कर दिया कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर साम्प्रदायिक है। यह तो है भीतरी रणनीति।

बाहर से आन्दोलन कर रही हैं, हम कांग्रेस का साथ न देंगे, कांग्रेस को उखाड़कर फेंक देंगे। हमने ही इन्दिरा को प्रधानमंत्री बनाया है, हम ही उसे फाँसी के तख्ते पर पहुँचा सकते हैं।

कोई हिन्दू ऐसे शब्द कहता तो उसे काले पानी भेज दिया जाता। किन्तु ये सब तो राष्ट्रीय मुसलमान कह रहे हैं। इन्दिरा रानी भीतर ही भीतर डर रही हैं। मुसलमानों को बड़े-से-बड़े पद दिये जा रहे हैं। बड़े-बड़े हिन्दुओं के प्रान्तों का उन्हें प्रधानमंत्री बनाया जा रहा है। शासन की समस्त बागडोर मुसलमानों को सौंपी जा रही है। हुमायूँ को पार करने वाले भिस्ती ने एक दिन को राजगद्दी मांगी थी उसी पर उसने चमड़े के सिक्के चला दिये थे। नबाब छत्तारी कुछ दिन को गवर्नर बने थे, उन्होंने मकतबों के वेतन बंधवा दिये। शुक्रवार की आधे दिन की छुट्टियाँ करा दीं, जो अब तक चालू हैं। ये मुस्लिम शिक्षा-मंत्री, खाद्य-मंत्री, गवर्नर, प्रधानमंत्री क्या क्या करस्मै दिखायेंगे इसे तो जनता आगे-आगे देखेगी। यह सब क्यों हो रहा है। मुसलमानों की निर्भीकता से संगठित होने से। यदि ५० करोड़ हिन्दू संगठित होकर हिन्दू हितों को माँग करें, तो कौन ऐसी सरकार का साहस होगा कि वह हिन्दू धर्म विरोधी विधेयक के ऊपर विधेयक पारित करती रहे।

६

"उनका मत था, हिन्दू हित विरोधी विधेयक लोकसभाओं में या विधानसभाओं में पारित न किये जायँ।"

सरकार हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों का कुछ भी विचार न करके हिन्दू धर्म विरोधी विधेयक पारित करती रहती है। उत्तराधिकार विधेयक, परित्याग-तलाक विधेयक, गोद लेने का विधेयक, धर्मादा विधेयक ये सबके सब हिन्दु धर्म के विरोधी विधेयक हैं। जो धर्मादे को धार्मिक संस्थायें अब तक मुक्त थी दाता उनमें दान देते थे, उनसे धार्मिक भावों का प्रचार होता था। सरकार ने उन पर भी आयकर लगाकर एक ही वाण में दो आखेट कर अपनी आय बढ़ा ली। और हिन्दू धर्म का जो उन संस्थाओं द्वारा कुछ प्रचार-प्रसार दान-धर्म होता था, वह भी रोक दिया। ईसाई-मुसलमानों पर ऐसे विधेयक बनाने का उसमें साहस नहीं। ये ईसाई मिशनरियों अरबों-खरबों रुपये धर्म के नाम, पर सेवा के नाम पर लाती हैं, उन पर सरकार आयकर नहीं लगाती। मुसलमानों के लिये एकता के विधेयक नहीं बनाती। वे अभी तक सरकारी नौकरी और मंत्री होने पर भी ४-४ विवाह कर सकते हैं। चार पत्नियाँ रख सकते हैं। भारत की क्या यही धर्म निरपेक्ष नीति है? ये सब अत्याचार क्यों हो रहे हैं? हिन्दू संगठित नहीं, निर्भय नहीं, उनका कोई सबल

नेता नहीं। उनकी माँगों को दृढ़ता से रखने वाला कोई लोकसभा या विधान सभाओं में प्रतिनिधि नहीं। जिस अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के लोगों ने पाकिस्तान बनवाया, जिसका वातावरण सदा हिन्दुओं का विरोधी रहा, जो प्रतिवर्ष सरकार से ३-४ करोड़ रुपये पाता रहा। उसके विधान में डरते-डरते उसके मुस्लिम स्वरूप को ज्यों का त्यों रखते हुए कुछ नाम मात्र का संशोधन कराया। वह भी भय के कारण मुस्लिम मंत्री द्वारा कराया। उसी पर मुसलमानों ने अखिल भारतवर्षीय स्तर पर कैसा हूँ-हल्ला मचाया, कितने दंगे कराये, कितने उपद्रव कराये और सरकार को पुनः उसके संशोधन के लिये विवश कर दिया और सरकार दबाव में आकर मान भी गयी। क्या गौ-रक्षा आन्दोलन में भी सरकार ने ऐसी नीति अपनायी? जो साधुओं द्वारा परम शान्तिमय ढंग से चलाया जा रहा था। उन्हें तो गोलियों से भून दिया। यह सब क्यों हुआ? इसलिये कि हिन्दुओं में संगठन नहीं। अपने को घर में हिन्दू कहलाने वाले जब कांग्रेसी बनकर पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तो हिन्दुओं को साम्प्रदायिक कहकर उनसे मिलते भी नहीं, संकीर्ण विचार का कहकर उन्हें दुदकारते हैं, उनसे वे सन्तुष्ट नहीं थे।

१०

"वे हिन्दू धर्म की सर्वांग उन्नति के इच्छुक थे। वे शुद्धि के पक्षपाती थे। वे चाहते थे जो हिन्दू किसी प्रलोभन वश आज या आज से सहस्र वर्ष पूर्व हमारे समाज से पृथक होकर विधर्मी बन गये हैं, उन्हें पुनः हिन्दू समाज में मिला लिया जाय।"

बात यह है कि फारस, अरब से तो कुछ ही इने-गिने आदमी आये थे। शेष दबाव से, लोभ-लालच से, आतंक से, हिन्दू समाज के वहिष्कार से अनिच्छापूर्वक विधर्मी बन गये हैं। उनमें रक्त तो हिन्दुओं का ही है, जैसे मलकाने पुनः हिन्दू समाज में आ गये। कश्मीर के समस्त मुसलमान ब्राह्मण ही थे, महाराजा गंगासिंह के काल में पुनः हिन्दू बनना चाहते थे, किन्तु काशी के पंण्डितों ने अनुमति नहीं दी। अलीगढ़ बुलन्दशहर में अधबरिया ठाकुर थे। तीन चार पीढ़ी पहिले ही वे मुसलमान बने हैं। अब तक उनके यहाँ हिन्दू आचार विचार था। पण्डित दान दक्षिणा लेने विवाह पढ़ने आते थे। उन्होंने भी आज से ४०-५० वर्ष पूर्व हिन्दू बनने की इच्छा की थी। किन्तु उनकी एक ही शर्त थी "हम पहिले जिस जाति के (बड़गूजर) थे, हमें उसी जाति में तुरन्त मिला लिया जाय।" किन्तु वहाँ के बड़गूजर ठाकुरों को यह शर्त स्वीकार नहीं थीं, बात वहीं रुक गयी। गुरुजी का मत था कि चाहें आज या सहस्र वर्ष पूर्व जो ईसाई मुसलमान बन गये है, यदि वे स्वेच्छा से पुनः समाज में आना चाहें तो आ जायँ। हिन्दू धर्म सार्वभौम धर्म है, वह मुसलमान,

ईसाईयों की भाँति यह आग्रह नहीं करता कि अपने समाज को छोड़कर ईसाई मुसलमान बन जाओ। अपने नाम विदेशी बदल लो। हिन्दू तो कहते हैं, तुम जहाँ हो, वहीं रहो, जिस देवता जिस आचार्य को मानते हो, उसे ही मानते रहो। तुम्हारा जो नाम है वही रहे। तुम अहिंसा, दया, शौच आदि जो धर्म के १० लक्षण हैं, उन्हें मानों और पुनर्जन्म, परलोक, आर्य सदाचारों का वहीं रहकर पालन करते रहो।

११

"उनका विचार था वन में रहने वाले वनवासियों की आदिवासी संज्ञा अंगरेजों ने दी, हिन्दू समाज की उपेक्षा और ईसाइयों के लालच के कारण वे विधर्मी बन गये हैं। उनमें धर्मप्रचार हो और जो ईसाई बन गये हैं उन्हें पुनः हिन्दू समाज में मिला लिया जाय।"

वे सबके सब हिन्दू ही हैं। ईसाइयों ने फुसलाकर लोभ लालच देकर ईसाई बना लिया है, अब कई प्रान्त ईसाईयों के शासन के बन गये हैं। पोप उन्हें आश्वासन दे गये हैं। तुम ३० प्रतिशत ईसाई और बढ़ा लो। फिर छोटा नागपुर से कन्याकुमारी तक हम ईसाईस्तान की मांग करेंगे। यदि इसी प्रकार ईसाई बढ़ते गये तो वनवासी सब हमारे हाथ से निकल जायेंगे। ईसाई राष्ट्र पोप के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। जैसे पाकिस्तान हमारे लिये सदा-सदा के लिए मस्तिष्क पीड़ा बन गया है, ऐसे ही दक्षिण का यह ईसाईस्तान हमारी संस्कृति का शत्रु बन जायगा। अतः उत्साही युवकों को वनवासियों में जाकर शीघ्रातिशीघ्र धर्म का प्रचार करना चाहिये।

१२

"वे चाहते थे, शिशु विद्यालय ऐसे खोले जायँ जिनमें आरम्भ से ही शिशुओं को भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी जाय।"

ये जो ईसाई मिशनरियों द्वारा बच्चों को शिक्षा दी जाती हैं, वह बहुत व्ययसाध्य है, उसमें क्रास बनाना, बाइविल और ईसाइत्व की महत्व के संस्कार छोटे बच्चों पर लादने का प्रयत्न किया जाता है, अतः गाँव-गाँव नगर-नगर में सरस्वती शिशु मन्दिरों की स्थापना होनी चाहिये।

१३

"वे चाहते थे, हिन्दी सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा हो, उसकी पढ़ाई सम्पूर्ण प्रदेशों में अनिवार्य हो। एक राष्ट्रभाषा हिन्दी, दूसरी उस प्रान्त की राजभाषा ये दो तो अनिवार्य हो और तीसरी देश के १४ भाषाओं में से अथवा विदेशी भाषाओं में से कोई एक गौरव इस प्रकार तीन भाषायें पढ़ाई जायँ।"

संविधान बनाते समय सबने सर्वसम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था और यह आशा व्यक्त की थी कि १५ वर्ष में हिन्दी अंग्रेजों का स्थान ग्रहण कर लेगी। श्री पटेल ने कहा था–"आज से ही हिन्दी अनिवार्य कर देने पर १५ वर्षों से सम्पूर्ण देशवासी हिन्दी सीख जायँगे।" यदि पटेलजी की बात मानली जाती तो आज हिन्दी की ऐसी दुर्गति नहीं होती। आज जो हिन्दी का विरोध कर रहे हैं, वे मानों संविधान का अपमान कर रहे हैं, जिसके पालन की वे शपथ ग्रहण करते हैं। आज हिन्दी सबसे हेय मानी जाने लगी है और मंत्रीगण ही उसका अपमान कर रहे है। जिसके ऊपर शिक्षा की उन्नति निर्भर है, वह शिक्षा-मंत्री सदा हिन्दी का द्वेषी, हिन्दी से अपरिचित मुसलमान ही बनाया जाता है, मानो हिन्दी भाषा जानने वाला देश में कोई मंत्री बनने के योग्य ही नहीं। भारतवर्ष में सबसे पुराने कांग्रेसी सबसे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ वरिष्ठ सेठ गोविन्ददासजी को कभी मंत्री बनाने के योग्य समझा ही नहीं गया। उनका सबसे भारी दोष यह है कि उनमें थोड़ा हिन्दुत्व है। वे गोरक्षा के पक्षपाती हैं।

१४

"वे चाहते थे, भारतीयता के प्रचार प्रसार निमित्त विभिन्न भाषाओं में हिन्दू संस्कृतिनिष्ठ त्रैमासिक, मासिक, साप्ताहिक दैनिक पत्रादि प्रत्येक प्रान्त की भाषाओं में निकलें, ग्रन्थ प्रकाशित हों।"

हमारे यहाँ जो सबसे अधिक संख्या में बिकने वाले पत्र हैं इंग्लिश भाषा के हैं। उनका दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं। अतः देशी भाषाओं के पाठक प्रयत्नपूर्वक अधिक से अधिक बढ़ाये जायँ।

१५

"वे चाहते थे, भारतीय धार्मिक पीठों की, हिन्दू धर्म के आचार्यों की अधिक से अधिक प्रतिष्ठा बढ़ायी जाय। उनके प्रति उपेक्षा-घृणा के भाव न बरते जायँ।"

हमारी सरकार की नीति इसके सर्वथा विपरीत है। पोप जब बम्बई आये तो उनका स्वागत करने तो हमारे देश के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बम्बई गये। किन्तु भारतीय पीठाधीशों का देश की सर्वोच्च विधान-निर्मात्री सभा में उनका अपमान किया जाता है। विधर्मी आचार्यों का तो भारतीय संस्थायें स्वागत करती हैं और भारतीय आचार्यों जब मनुस्मृति को मानने को कहते हैं, तो उन पर अभियोग चलाने की धमकी दी जाती है।

एक बार मैं गोरक्षा आन्दोलन के सम्बन्ध में पूना गया। उस समय पूना में ईसाइयों के भारत के सबसे बड़े धर्मगुरु-पादरी (लार्ड विशप) आने वाले थे। पूना नगर पालिका ने एक प्रस्ताव पारित करके उन्हें अभिनन्दन पत्र देने

का निश्चय किया। उस दिन नगर पालिका की बैठक में यह निश्चय होने वाला था कि अभिनन्दन में कितना द्रव्य व्यय किया जाय। उसी समय एक हिन्दू विचारधारा के सदस्य ने प्रस्ताव रखा, "हिन्दुओं के नेता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भी पूना आये हुए हैं, उन्हें भी अभिनन्दन पत्र दिया जाय।" ब्रह्मचारीजी को कांग्रेसी सदस्य अभिनन्दन पत्र कैसे देते। वे तो हिन्दू हैं और उन्होंने सबसे अक्षम्य जघन्य पाप तो यह किया कि उन्होंने चुनाव में नेहरू जी की प्रत्यावरोध किया था। इस प्रस्ताव का प्रभाव यह हुआ कि न लार्ड विशप का अभिनन्दन किया गया न ब्रह्मचारी जी का। वे ऐसी हमारी सरकार की हिन्दू विरोधिनी नीति के घोर विरोधी थे। विदेशों में बसे हिन्दुओं के लिये सरकार कुछ भी नहीं करती। जनता की ओर से ही वहाँ धर्मोपदेशक भेजे जायँ।

१६

"वे चाहते थे, नौकरियाँ योग्यतानुसार दी जायँ। किसी भी जाति या वर्ग को दृष्टि में रखकर उस जाति को संरक्षण न दिया जाय।"

मुसलमानों की माँग है, हमें फौज में, पुलिस में, नौकरियों में अधिकाधिक संरक्षण मिले। जो धर्म के कारण सेना या पुलिस में विशेष रूप से लिया जाय, यह सरकार के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा न रह कर उस जाति का उचित-अनुचित पक्षपात करेगा। इससे तो सरकार विगठित होगी। संरक्षितों का आतंक बढ़ेगा।

१७

"वे चाहते थे, इतने प्रान्त कमिश्नरियाँ न रहें। देश को पूरब, उत्तर, दक्षिण पश्चिम तथा मध्य पाँच भागों में विभक्त कर दिया जाय। कमिश्नरियाँ तोड़ दी जायँ। जिलाधीश सीधे प्रान्तीय सरकार के अधीन रहें।"

ऐसा करने से भाषावाद, जातिवाद, प्रान्तवाद सब समाप्त हो जायँगे। पाँच प्रान्त सीधे केन्द्रीय सरकार के अधीन रहें। विधान केन्द्रीय सरकार ही बनावे।

१८

"वे चाहते थे, वर्तमान चुनाव प्रणाली दोषपूर्ण है इससे विघटन, राग द्वेष बढ़ता है। गाँवों के प्रतिनिधि मिलकर तहसील को चुनें। तहसील के प्रतनिधि जिले के और जिले के प्रान्त को। चुनाव हो तो केवल राष्ट्रपति का ही हो।"

१९

"वे चाहते थे, जिन विधर्मियों ने हमारे देवमंदिर अवतार स्थल नष्ट कर दिये हैं, उनका पुनः जीर्णोद्धार हो। पुराने कलंक को धोया जाय।"

यह कितनी लज्जा की बात है कि ५० करोड़ हिन्दुओं के पूज्य राम-कृष्ण की जन्मभूमियों पर आज विधर्मियों के स्थान खड़े हैं। उन्हें विशुद्ध बनाया जाय।

२०

"वे चाहते थे, जैसे पहिले गांव में अखाड़े, देवालय, उपासनागृह होते थे, उनकी पुनः प्रतिष्ठा की जाय। देश के उत्सव-पर्वों को राष्ट्रीय-पर्व मानकर सभी मनावें। समस्त देशवासियों की विभिन्न उपासना पद्धति मानते हुए भी राष्ट्रीयता एक हो।"

इस प्रकार वे सम्पूर्ण भारत को भारतीय संस्कृतिनिष्ठ एक निर्भीक हिन्दू राष्ट्र बनाने के पक्षपाती थे। उनके भक्तों, प्रशंसकों तथा अनुयायियों का कर्त्तव्य है कि वे उनके स्वप्नों को साकार बनावें। उनके बताये हुये मार्ग का अनुसरण करके भारतीय राष्ट्र की राष्ट्रीयता को श्रीसम्पन्न, सुदृढ़ और समुन्नत बनावें। बहुत ही संक्षेप में मैंने जैसे उनके भाव समझे उन्हें सूत्र रूप से लिखा दिया। इनका विस्तार अन्य लोग कर सकते हैं।

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

छप्पय

हिन्दु धर्मरत रहे सबहिं सद्गुन अपनावै।
हिन्दु संस्कृति बढ़ै, हिन्दु पूरब यश पावैं।।
हिन्दु संगठित होयँ दोष, तंद्रा भय त्यागैं।
हिन्दु त्यागि आलस्य, घोर निद्रा तैं जागैं।।
हिन्दू-राष्ट्र गौरव लहै, हिन्दु-धर्म उत्थान हो।
हिन्दु परम पावन बनैं, पुनि जग में सम्मान हो।।

जीवन परिचय पूज्य श्री गुरूजी

* *पूरा नाम* : पू. माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर।
* *माता-पिता* : वन्दनीया लक्ष्मीबाई, श्री सदाशिवराव। माता-पिता की नौ संतानों में अकेले जीवित थे। *जन्म* : फाल्गुन कृष्ण एकादशी (विजया एकादशी) विक्रम संवत् 1963 तदनुसार 19 फरवरी 1906, नागपुर।
* अन्य धर्मों के ग्रंथों का भी गहन अध्ययन। बाईबिल का गलत संदर्भ आने पर अपने ईसाई प्रधानाचार्य गार्डिनर को टोका।
* 1928 में एम.एस.सी. (जीव विज्ञान) की परीक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण तथा 1931 से 33 तक वहीं पर अध्यापन। 'गुरू जी' उपनाम विद्यार्थियों के स्नेह के कारण मिला। यहीं से संघ के संपर्क में आए।
* 1934 में नागपुर की तुलसीबाग शाखा के कार्यवाह बनें तथा [illegible] कार्य विस्तार के लिए मुम्बई गए।
* 1935 में नागपुर से एल.एल.बी. की परीक्षा उतीर्ण की।
* 1936 में अमिताभ महाराज के साथ दीक्षा लेने स्वामी अखंडानन्द जी के सारगाछी आश्रम गये।
* 13 जनवरी 1937 को दीक्षा प्राप्त हुई। इसी वर्ष अपने गुरू के निधन के बाद नागपुर वापस।
* 1939 में ही कलकत्ता कार्य विस्तार हेतु गए।
* बाबाराव सावरकर की "राष्ट्र-मीमांसा" पुस्तक का अनुवाद किया जो 'वी–आवर नेशनहुड डिफाईन्ड' (We–Our nationhood defined) नाम से छपी। 13 अगस्त 1939 को सर कार्यवाह बनें।
* 3 जुलाई 1940 को प्रथम सरसंघचालक प्रणाम उन्हें दिया गया।
* "मैं डा. हेडगेवार का दाहिना हाथ था तो गुरूजी उनके हृदय थे" अप्पाजी जोशी का वकील महोदय को उतर।
* देश विभाजन के समय (8 अगस्त, 1947 तक) पंजाब व सिंध प्रांत का प्रवास किया।
* महात्मा गाँधी की हत्या पर शाखाओं पर 13 दिन का शोक रखने हेतु सर्वदूर तार द्वारा संदेश।
* संघ पर प्रतिबंध: 1 फरवरी 1948 को गिरफ्तार जबकि संघ पर प्रतिबंध 4 फरवरी को लगा।
* 44 दिनों के सत्याग्रह में 77,090 स्वयंसेवक पूज्य गुरूजी के आह्वान पर जेल गए।
* विश्व हिन्दू परिषद् जैसे अनेकों संगठनों की शुरूआत की। वर्ष भर में पूरे देश की तीन बार परिक्रमा करते थे तथा लगभग 40,000 पत्र लिखे।
* 18 अक्टूबर 1947 को कश्मीर के महाराजा से भेंट, कश्मीर का भारत में विलय।
* भारत पर चीन के आक्रमण का पूर्व संकेत दिया।
* 3 मई, 1970 को कर्क (कैंसर) रोग है इसकी जानकारी हुई। (बीमारी में भी 23-25 मई, 1970 को प्रतिनिधि सभा में उपस्थित रहें।) 1 जुलाई को टाटा मेमोरियल, मुंबई में शल्य-क्रिया।
* 2 अप्रैल, 1973 को रामटेक स्थित अपना घर 'भारतीय उत्कर्ष मंडल' नामक संस्था को दान कर दिया।
* 5 जून 1973 को महाप्रयाण। 'भारत माता की जय' प्रार्थना की यह अंतिम पंक्ति उनके मुँह से निकले अन्तिम शब्द थे।

सहयोग राशि : पाँच रू. मात्र